हिन्दी छन्द, अलंकार, मुहावरे समीक्षा, व्याकरण

डा० [illegible]

हिन्दी साहित्य केन्द्र

मूल्य ४-००

हिन्दी छन्द चार्ट

वाक्य-रचना के भेद

वाक्य-रचना के दो भेद हैं—गद्य और पद्य।

गद्य—गद्य में वाक्य किसी विशेष नियम को लेकर नहीं लिखा जाता। वाक्य को समाप्त करके अन्त में विराम होता है। वाक्य के लिए निश्चित अक्षरों अथवा मात्राओं का कोई नियम नहीं होता। इसके द्वारा व्यक्ति अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना आदि सब गद्य के उदाहरण हैं। जैसे—'मृगनयनी', 'उसने कहा था', 'चिन्तामणि' आदि रचनाएँ गद्य में लिखित हैं।

पद्य—जिस रचना में रचयिता अपने अभिप्राय को वर्णों अथवा मात्राओं की निश्चित संख्या के अन्तर्गत प्रकट करता है, उसे 'पद्य' कहते हैं। इसमें वर्ण, मात्रा, लघु, गुरु, लय, यति आदि के विशेष नियम होते हैं। कविता की रचना पद्य कहलाती है। जैसे—'कामायनी', 'रामचरितमानस', 'पद्मावत' आदि पद्यात्मक रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पद्य ऐसे भी होते हैं, जिनमें वर्ण, मात्रा, यति आदि का कोई विशेष नियम नहीं होता। यह सब कवि की इच्छा पर निर्भर रहता है। ऐसी रचना आधुनिक काल में हुई है।

छन्द

छन्द की परिभाषा—जिस रचना में वर्ण, मात्रा, गण, यति, लघु, गुरु, आदि की नियत संख्या के आधार पर नियत चरण बनाये जायें, उसे 'छन्द' कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा में जिन वर्ण, मात्रा आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनका स्पष्टीकरण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

वर्ण—वर्ण दो प्रकार के होते हैं—स्वर और व्यंजन। इन्हें 'अक्षर' भी कहते हैं। स्वर और व्यंजन, दोनों ही वर्ण हैं, परन्तु छन्द-शास्त्र में वर्णों की गणना करते समय स्वरों को ही गिनते हैं। स्वर सभी व्यञ्जनों में मिले रहते हैं, अतः सभी व्यंजनों की संख्या हो सकती है, परन्तु यदि कोई व्यंजन स्वर-रहित है अर्थात् आधा है या हलन्त है, तब उसकी गणना नहीं होगी। उदाहरण के लिए 'राम' शब्द लीजिये। इसके दो वर्ण हुए, क्योंकि इसमें दो स्वर हैं। अब लीजिए 'ओम्' शब्द। इसमें एक वर्ण है, क्योंकि 'ओ' एक स्वर है, 'म्' में स्वर नहीं है, क्योंकि वह हलन्त है। इसी प्रकार 'अध्यापक' शब्द है, इसमें अ+ध्+य्+आ+प्+अ+क्+अ कुल स्वर और व्यंजन मिलाकर संख्या में आठ हैं। परन्तु वर्णों की गणना करते समय इसमें चार ही वर्ण माने जायेंगे, क्योंकि इसमें चार स्वर हैं। शेष जो व्यंजन रहे, उनकी गणना नहीं की जायेगी।

मात्रा—अक्षर का उच्चारण करने में कुछ-न-कुछ समय लगता है। छन्द-शास्त्र में उच्चारण-काल को 'मात्रा कहते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि छन्द-शास्त्र में वर्णों को गिनते समय व्यंजनों की गणना

नहीं होती। इसी प्रकार मात्राओं की गणना करते समय भी व्यंजनों को छोड़ देते हैं। स्वर दो प्रकार के होते हैं—ह्रस्व स्वर और दीर्घ स्वर। ह्रस्व स्वरों का उच्चारण करने में कम समय लगता है। उनकी एक मात्रा होती है। दीर्घ स्वरों का उच्चारण करने में अधिक समय लगता है। उनकी दो मात्राएँ होती हैं। ह्रस्व स्वर ये हैं—अ, इ, उ, ऋ, लृ, अतः इनकी एक मात्रा होती है। दीर्घ स्वर ये हैं—आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। इनका उच्चारण करने में ह्रस्व से दूना समय लगता है, अतः इनकी दो मात्राएँ होंगी। जिन व्यंजनों पर ह्रस्व स्वर की मात्राएँ होंगी या दीर्घ स्वर की मात्राएँ होंगी, उसी के अनुसार उनकी मात्राओं की गणना की जायेगी। जैसे 'सीतापति' शब्द में सी और ता पर दीर्घ मात्राएँ हैं, अतः इनकी दो-दो मात्राएँ हुईं; 'प' में स्वर अ है, जो ह्रस्व है; और 'ति' में स्वर इ है, वह भी ह्रस्व है, अतः 'प' और 'ति' में एक-एक मात्रा हुई। इस प्रकार 'सीतापति' में कुल मिलाकर छः मात्राएँ हुईं।

यति—जिस प्रकार साधारण बोलचाल में वाक्य की समाप्ति पर थोड़ा-सा रुका जाता है और गद्य लिखने में वाक्यों में विराम-चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार छन्दों में भी कहीं-कहीं थोड़ा रुकने का नियम है। इसे 'यति' कहते हैं। छन्दों का ठीक अर्थ समझने के लिए और उनमें सौन्दर्य लाने के लिए यति का प्रयोग आवश्यक होता है। साधारण रूप से छन्द के प्रत्येक पाद के अन्त में यति का नियम है, परन्तु पाद के मध्य में भी यति की जाती है। कुछ छन्दों में एक ही चरण में कई स्थानों पर यति की जाता है। इसका उल्लेख छन्दों के उदाहरणों के प्रसंग में किया गया है। यति का उदाहरण इस

प्रकार द्रष्टव्य है—

"मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय"

उपर्युक्त पंक्ति में 'हरो' के पश्चात् थोड़ी देर रुकने की आवश्यकता पड़ती है। इससे इस दोहे को पढ़ने में सुन्दरता तथा समझने में सरलता भी आती है।

उपर्युक्त प्रकार से यति के नियम का पालन किया जाता है, किन्तु यति किसी शब्द के मध्य में नहीं आनी चाहिए। ऐसा करने से न तो पढ़ने में ही सौन्दर्य रहेगा और न अर्थ समझने में ही सरलता रहेगी। उदाहरण के लिए देखिये—

"पुनि मन वचन क,रम रघुनायक।"

इस पंक्ति में 'करम' शब्द के मध्य में अर्थात् क के पश्चात् यति रख दी गई है। इस तरह 'करम' शब्द दो भागों में विभक्त हो गया। इससे न तो सौन्दर्य ही बढ़ा और न ही ठीक अर्थ समझ में आता है। ऐसे स्थान पर यतिभंग दोष होता है। छन्द-रचयिता को दोष से सावधान रहना चाहिए।

गति—कविता मन से स्वाभाविक रूप से फूट पड़ती है। स्वतःप्रवाहित कविता में प्रवाह होता है, सरसता होती है। इस गुण को 'गति कहते हैं। रससिद्ध कवियों की कविता में गति का निर्वाह सर्वत्र देखने को मिलता है। जहाँ किसी चरण में गति का अभाव होगा, वहाँ वह कविता खटकने लगेगी। उदाहरण के लिए तुलसी की यह पंक्ति देखिये—

"गुरु बिन मिलै न ज्ञान, ज्ञान कि होय विराग बिन।"

इस पंक्ति के शब्द हृदय से निकलकर स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होते हुए प्रतीत होते हैं। यही गति है। परन्तु कहीं-कहीं शब्दों का ठीक चयन न होने के कारण या छन्द की सप्रयास रचना करने के कारण ऐसी पंक्ति बन जाती है, जिसमें प्रवाह नहीं होता। जैसे—

"गोविन्द नाम जाहि में संगीत भलो जान।"

इस पंक्ति में प्रवाह नहीं है। पढ़ने में आनन्द भी नहीं आता। शब्दों का चयन ऐसा नहीं है, जिसे पढ़कर प्रवाह-सा लगे। अतः यहाँ पर गति का निर्वाह नहीं हुआ है।

पाद—छन्द को कई भागों में विभक्त किया जाता है। अलग-अलग विभाग को एक 'पाद' कहते हैं। पाद को 'चरण' भी कहते हैं। छन्द में प्रायः चार पाद होते हैं। अतः प्रायः छन्द के चौथे भाग को पाद कहते हैं। कहीं-कहीं ऐसा होता है कि छन्द में चार के स्थान पर छः पाद होते हैं। अर्थात् कुण्डलिया और छप्पय छः भागों में विभक्त रहते हैं। ऐसी स्थिति में छः भागों में से प्रत्येक भाग को एक पाद कहेंगे। यहाँ चौथे अंश के स्थान पर छठे अंश को पाद या चरण कहा जाता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। हम 'दोहा' छन्द के चारों चरण अलग-अलग गिनाते हैं—

"तुलसी संत सुअंबु तरु, फूल फलहिं पर हेत।
इत ते ये पाहन हनत, उत ते वे फल देत॥"

इस दोहे में 'तुलसी संत सुअंबु तरु', 'फूल फलहिं पर हेत', 'इत ते ये पाहन हनत', 'उत ते वे फल देत'—ये चार चरण इस छंद के अंश हैं। इसी प्रकार छप्पय में छः पाद जानने चाहिएँ।

गण—छंद-शास्त्र में तीन अक्षरों के समूह को 'गण' कहते हैं। तीन अक्षरों के लघु और गुरु, दोनों रूपों का प्रयोग इसमें करते हैं। कहीं सभी लघु होते हैं, कहीं सभी गुरु; तथा कहीं पहला अक्षर लघु, शेष दो गुरु आदि-आदि। इस प्रकार गणों के आठ रूप बनते हैं। उनके रूपों के अनुसार उनके नाम भी निश्चित किये गये हैं। ये इस प्रकार हैं—"**यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण और सगण।**"

गणों को स्मरण रखने के लिये इनके प्रथम-प्रथम अक्षर को लेकर एक सूत्र बना लें और उसमें गणों के स्वरूप के अनुसार मात्रा लगा लें तो गणों को याद करने में सुविधा होगी। वह संक्षिप्त रूप इस प्रकार बनता है—"**यमाताराजभानसलगा**" इसमें प्रथम आठ अक्षर तो आठ गणों के नाम हैं और अंतिम दो लघु और गुरु हैं तथा इनसे सगण का रूप भी निश्चित होता है। जिस गण के स्वरूप को जानना हो अर्थात् कितने लघु-गुरु आदि के द्वारा वह गण बनता है, इसके लिये उस गण के अक्षर को लेकर तथा दो और आगे के अक्षर लेकर उसका स्वरूप माना जा सकता है। जैसे—हमें यगण का स्वरूप ज्ञात करना है। 'यमाताराजभानसलगा' में य के पश्चात् 'मा' और 'ता' और ले लिये; इस तरह यगण में प्रथम अक्षर लघु और शेष दो अक्षर गुरु होंगे। इसी प्रकार सब गणों को जानना चाहिए। गणों के नाम, स्वरूप और चिन्ह नीचे दिये गये हैं—

नाम	स्वरूप	लक्षण	उदाहरण
यगण	। ऽ ऽ	लघु गुरु गुरु	प्रवासी
मगण	ऽ ऽ ऽ	गुरु गुरु गुरु	आत्मीया
तगण	ऽ ऽ ।	गुरु गुरु लघु	आधीन
रगण	ऽ । ऽ	गुरु लघु गुरु	जायसी
जगण	। ऽ ।	लघु गुरु लघु	रमेश
भगण	ऽ । ।	गुरु लघु लघु	रावण
नगण	। । ।	लघु लघु लघु	सरस
सगण	। । ऽ	लघु लघु गुरु	तुलसी

मात्रा गण—तीन वर्णों का समूह 'गण' कहलाता है। उसे 'वर्ण गण' भी कहते हैं। जिस तरह तीन वर्णों का समूह वर्ण गण कहलाता है, उसी प्रकार चार मात्राओं के समूह को 'मात्रा गण' कहते हैं। जिस प्रकार तीन वर्णों के गणों के आठ रूप बनते हैं, वैसे ही चार मात्राओं के गणों के पांच रूप बनते हैं। जैसे—केवल लघु लघु, केवल गुरु आदि। इनके नाम भी रखे गये हैं; जैसे—सुरतलता, कमल आदि, परन्तु इन नामों का आजकल प्रयोग नहीं होता। इन मात्रा गणों को सामान्य रूप से 'चतुष्कल' कहते हैं। मात्रा गणों के स्वरूप और उदाहरण इस प्रकार हैं—

स्वरूप	लक्षण	उदाहरण
SS	गुरु गुरु	राजा
IIS	लघु लघु गुरु	रजनी
ISI	लघु गुरु लघु	सुरेश
SII	गुरु लघु लघु	भावुक
IIII	लघु लघु लघु लघु	तरुवर

लघु और गुरु:—यह पहले कहा जा चुका है कि छंद-शास्त्र में दो प्रकार की मात्राएँ होती हैं—ह्रस्व और दीर्घ। इन्हीं को क्रमशः लघु और गुरु भी कहते हैं। अतः लघु की एक मात्रा और दीर्घ की दो मात्राएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त कहीं ह्रस्व वर्ण दीर्घ भी माना जाता है और दीर्घ ह्रस्व। इसके लिए कुछ नियम हैं, जिन्हें जानना आवश्यक है।

लघु का क्षण

१. अ, इ, उ और ऋ का प्रयोग स्वतंत्र रूप से हो या व्यंजनों में मिलकर हो, वहाँ लघु माना जायेगा। जैसे—'दिन', इस शब्द में दोनों अक्षर लघु हैं। अनुस्वार अथवा विसर्गरहित सभी ह्रस्व स्वर लघु होते हैं।

२. दो व्यंजनों के संयोग से पहले ह्रस्व वर्ण को दीर्घ मानने का नियम है, परन्तु जहाँ ह्रस्व व्यंजन पर दवाव नहीं पड़ता, वहाँ वह गुरु नहीं होता, चाहे आगे संयुक्त व्यंजन ही क्यों न हो। जैसे—

"यह दृढ़ श्री हरिचन्द को मिटै न अविचल प्रेम।"

यहाँ 'दृढ़ श्री' में ढ़ और 'अविचल प्रेम' में ल का प्रयोग संयुक्त अक्षरों से पूर्व हुआ है, अतः इन्हें दीर्घ होना चाहिए, परन्तु इन्हें पढ़ने पर बल नहीं पड़ता, अतः ये ह्रस्व ही हैं।

३. अनुनासिक अक्षर ह्रस्व होने पर ह्रस्व ही माना जाता है। जैसे—'विहँस कहेउ' में हँ अनुनासिक है और यह ह्रस्व है, अतः इसे ह्रस्व या लघु ही माना जाएगा।

४. जहां पर दीर्घ शब्द का प्रयोग ह्रस्व की तरह किया गया हो, वहाँ भी लघु ही होता है। जैसे—

"आयहिं मोसन यह कह्यो, गो रस लेहु गोपाल।"

इसमें गोपाल का 'गो' शब्द दीर्घ होते हुए भी ह्रस्व की तरह प्रयुक्त हुआ है, अतः यहाँ पर लघु है।

गुरु का लक्षण

१. आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ और औ, ये स्वर दीर्घ होते हैं। जहां इनका प्रयोग होता है, वहां गुरु होता है। जैसे—'ईश' शब्द में 'ई' दीर्घ है, अतः इसे गुरु कहेंगे।

२. अनुस्वार और विसर्ग से युक्त वर्ण गुरु माने जाते हैं। जैसे—कंस, वंश, अंतःकरण आदि। इनमें 'कं' 'वं' 'अं' और 'तः' गुरु माने जायेंगे।

३. संयुक्त अक्षरों से पूर्व का वर्ण लघु होते हुए भी दीर्घ माना जाता है। जैसे 'मध्य' शब्द में 'ध्य' संयुक्ताक्षर है। इससे पहले 'म' के उच्चारण में कुछ दबाव पड़ता है, अतः 'म' को गुरु माना जाएगा।

४. कभी-कभी पाद के अंतिम लघु अक्षर को आवश्यकता पड़ने पर छंद की पूर्ति के लिए गुरु

मान लिया जाता है। जैसे—

"दुखित हैं धन हीन धनी सुखी,
यह विचार परिष्कृत है यदि।"

यहाँ पर 'यदि' का 'दि' यद्यपि लघु है, परन्तु पाद का अन्तिम अक्षर है और आवश्यकता भी पड़ रही है, अतः इसे गुरु मान लिया गया है।

मात्राओं और गणों के चिह्न लगाने की विधि

मात्राएँ दो प्रकार की होती हैं–लघु और गुरु। गणों में भी लघु और गुरु का ही प्रयोग होता है। लघु के लिए (।) यह चिह्न निश्चित है और गुरु के लिए (ऽ) इस चिह्न का प्रयोग करते हैं। जिस स्थान पर लघु-गुरु के चिह्न लगाने हों, वहाँ थोड़ा-सा फासला रखना चाहिए और छन्द के अन्त में उनका प्रयोग कर देना चाहिए। जैसे—

।।।। ऽ ।।।ऽ। ऽऽ
सुनहु सखा कह कृपा निधाना = १६ मात्राएँ

गण का निश्चय करने के लिए लघु और गुरु के चिह्न लगाने के पश्चात् तीन-तीन अक्षरों पर एक रेखा भी खींच देनी चाहिए ताकि गणों का स्पष्ट पता लग जाये। अन्त में यदि दो या एक अक्षर

बचे तो उस पर लघु अथवा गुरु लिख देना चाहिए। जैसे—

भ	भ	भ	भ	भ	भ	भ	ग ग
ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ।।	ऽ ऽ
नाम अ	जामिल	से खल	कोटि अ	पार न	दी भव	बूढ़त	काढ़े।

यहाँ पहले सात स्थानों पर 'भ' लिखने से तात्पर्य भगण से है और अन्त में ग से तात्पर्य है गुरु से। अतः इस छन्द में सात भगण और अन्त में दो गुरु हैं।

छन्दों के भेद

छन्दों के प्रथमतः दो प्रकार हैं—वर्णिक छन्द और मात्रिक छन्द। वर्णिक छन्द को 'वृत्त' और मात्रिक छन्दों को 'जाति' भी कहते हैं।

वर्णिक छन्द—जिन छन्दों की रचना वर्णों के आधार पर होती है, वे वर्णिक छन्द होते हैं। वर्णिक छन्दों में वर्णों की गणना की जाती है। इसके साथ लघु-गुरु का स्थान तथा यति आदि का प्रयोग भी बतलाया जाता है। जैसे—कवित्त वर्णिक छन्द है।

मात्रिक छन्द—जिन छन्दों की रचना मात्राओं के आधार पर होती है, वे मात्रिक छन्द कहलाते हैं। इनमें मात्राओं की संख्या, यति, लघु, गुरु आदि का भी विचार किया जाता है। जैसे—चौपाई मात्रिक

छन्द है।

वर्णिक और मात्रिक छन्दों के भेद—वर्णिक और मात्रिक छन्दों के तीन भेद हैं—(१) सम, (२) अर्धसम, (३) विषम।

जिस छन्द में वर्णों अथवा मात्राओं की संख्या चारों चरणों में समान हो, वह सम होता है—चारों पादों में समान वर्ण हों तो सम वर्णिक और चारों पादों में समान मात्राएँ हों तो सम मात्रिक। यदि पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पाद में समानता मिलती हो, तो वह अर्धसम होता है। जिस छंद में उपर्युक्त दोनों लक्षण—सम और अर्धसम के—न मिलते हों, उसे विषम कहते हैं। विषम के या तो चारों पाद अलग-अलग होते हैं या दो पाद एक-से और तीसरे-चौथे एक-से होते हैं। चार से अधिक पाद के छन्द भी विषम ही होते हैं। आगे हम इनके उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

वर्णिक छन्द

१. सम

"यहाँ शतों में नर वीरता लखी, लखी सहस्रों जन में सुविज्ञता। — १२—१२ वर्ण
गुणी लखे पुरुष लक्ष कोटि भी, उदार एकाधिक दीखते नहीं॥" — १२—१२ वर्ण

२. अर्धसम

"चिरकाल रसाल ही रहा, जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा। — १०—११ वर्ण
जय हो उस कालिदास की, कविता-केलि-कला विलास की॥" — १०—११ वर्ण

३ विषम

"सब त्यागि ये असत काम, शरण गहिए सदा हरी । १०—१० वर्ण
सर्व मूल भव जायं टरी, भजिये अहो निशि हरी-हरी ॥" १०—११ वर्ण

मात्रिक छन्द

१. सम

"सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । विनती सुनहु सदा शिव मोरी ॥ १६—१६ मात्राएं
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जन जानी ॥" १६—१६ मात्राएं

२. अर्धसम

"काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ । १३—११ मात्राएं
का न करै अबला प्रवल, किहि जग काल न खाइ ॥" १३—११ मात्राएं

३. विषम

"लाठी में गुन बहुत हैं, सदा राखिये संग ।
गहरो नद नाला जहाँ, तहाँ बचावै अंग ॥
तहाँ बचावै अंग, झपट कुत्ता कँ मारै ।
दुश्मन दावागीर, तिनहुँ को मस्तक झारै ॥

कह गिरधर कविराय, सुनो हो घर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि, हाथ में लीजे लाठी॥"

विशेष—इसमें चार से अधिक चरण हैं, यह विषम मात्रिक छन्द है।

सम के उपभेद

वर्णिक और मात्रिक छन्दों के तीन-तीन भेद होते है—सम, अर्धसम और विषम। इनमें सम के दो-दो भेद और होते हैं—साधारण और दण्डक।

वर्णिक सम साधारण—जिन छन्दों के प्रत्येक चरण में वर्ण-संख्या एक से छब्बीस अक्षरों तक रहे, उन्हें सम साधारण वर्णिक छन्द कहते हैं। इनको एक अक्षर, द्वयक्षर आदि नामों से पुकारते हैं। छब्बीस वर्णों तक के इसके छब्बीस प्रकार हो गये। इनको अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, जो इस प्रकार हैं—उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिं जगती, शक्करी, अतिशक्करी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अतिकृति, उत्कृति।

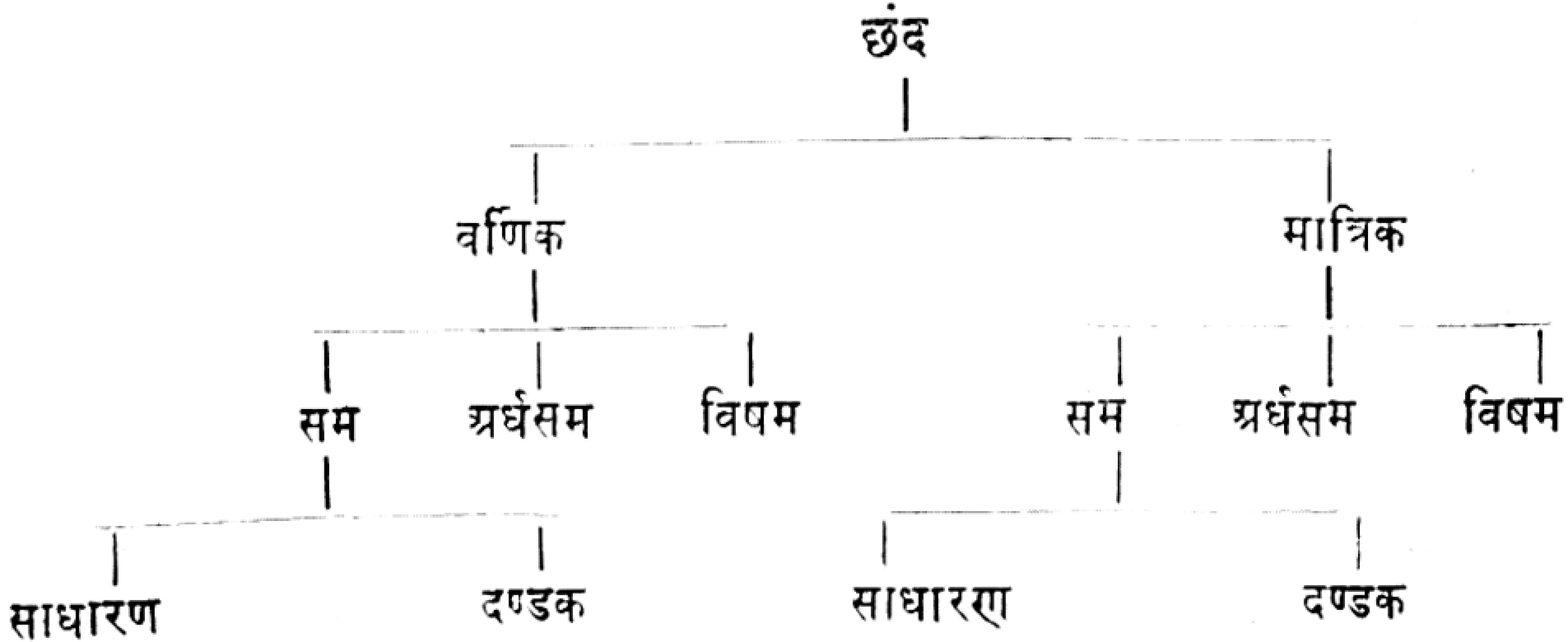
वर्णिक सम दण्डक—जिन छन्दों के चरण में छब्बीस से अधिक अक्षर हों, वे दण्डक कहे जाते हैं। इनकी संख्या अनेक है।

मात्रिक सम साधारण—जिन छन्दों के प्रत्येक चरण में एक मात्रा से लेकर बत्तीस मात्राओं तक का प्रयोग हो, वे मात्रिक सम साधारण छन्द होते हैं। इनके भी वर्णिक सम साधारण की भाँति अलग-

अलग नाम होते हैं। वे इस प्रकार हैं—चान्द्र, पाक्षिक, राम, वैदिक, याज्ञिक, रागी, लौकिक, वासव, अंक, रौद्र, आदित्य, भागवत, मानव, तैथिक, संस्कारी, महासंस्कारी, पौराणिक, महापौराणिक, महादैशिक, त्रैलोक, महारौद्र, रौद्रार्क, अवतारी, महावतारी, महाभागवत, नाक्षत्रिक, यौगिक, महायौगिक, दैशिक, महातैथिक, अश्वावतारी, लाक्षणिक ।

मात्रिक सम दण्डक—जिन छन्दों के प्रत्येक चरण में बत्तीस से अधिक मात्राएँ होती हैं, वे 'मात्रिक सम दण्डक, कहलाते हैं।

छन्दों का भेद-निरूपण



विशेष—उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त कुछ वैदिक छन्द होते हैं, जिनका प्रयोग वेदों में हुआ है। वैदिक छन्द प्रधानतः ७ हैं—गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती। इसी तरह आधुनिक काल में नवीन छन्द का आविर्भाव हुआ है, जिसे 'मुक्त छन्द' कहते हैं। इसमें वर्ण, मात्रा आदि की संख्या नियत नहीं होती, केवल लय ही इसका आधार है।

छन्दों का विकास

वाणी में छन्दों का बड़ा महत्त्व है। गति अथवा लय के कारण स्मरण रखने की सुविधा छन्द में अपेक्षाकृत अधिक रहती है। इसी से जब मौखिक रूप से ही विचारों का आदान-प्रदान होता था, तब छन्द ही व्यवहृत होते थे। संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' माना जाता है। उसकी रचना भी छन्दोबद्ध रूप में हुई है। इस प्रकार छंदों के विकास की परम्परा अतीत काल से चली आ रही है। 'ऋग्वेद' के अतिरिक्त अन्य वेद-शास्त्रों, उपनिषदों और पुराणों में छंदों का प्राधान्य है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, ज्योतिष, कोष, व्याकरण आदि के प्राचीन काल के ग्रन्थ छन्दोबद्ध मिलते हैं। संस्कृत से विकसित होकर अन्यान्य रूपों में आगे बढ़ने वाली पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी पहले-पहले छन्दोबद्ध रचनाएँ ही हुई हैं। इसी प्रकार हिन्दी-भाषा के अतीत इतिहास में भी छन्द की प्रमुखता मिलती है।

छन्द प्रायः दो प्रकार के हैं—वैदिक छंद और लौकिक छन्द। वैदिक छन्द सात हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती। वेदों में प्रयुक्त होने वाले छंदों की संख्या बहुत

अधिक नहीं है और यह भी सत्य है कि रचना के पश्चात् ही नियम आदि बना करते हैं, परन्तु वेद के अङ्गों में छन्द-शास्त्र का परिगणन देखकर छन्द-शास्त्र-सम्बन्धी विचारों की प्राचीनता का पता भली भाँति लगता है। छः वेदाङ्ग इस प्रकार हैं—शिक्षा, काव्य, निरुक्त, छंद, व्याकरण और ज्योतिष। इस प्रकार छंद-शास्त्र के सम्बंध में प्राचीनता की चर्चा वेदों तक की प्राचीनता के समान अनुमित की जा सकती है। शाङ्खायन श्रौत सूत्र, प्रातिशाख्य आदि में भी छन्द-शास्त्र के कुछ सिद्धान्तों का पता लगता है।

लौकिक छंदों का विकास वैदिक छन्दों की अपेक्षा अधिक हुआ है। जैसे-जैसे नये-नये ग्रन्थों का निर्माण होता गया वैसे-वैसे नये नियम भी निर्धारित किये जाते रहे। लेकिन संस्कृत के छंदों की शिक्षा के विषय में सबसे प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ पिंगल ऋषि का 'छन्दःसूत्र' है। यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है और इस प्रसिद्धि के कारण ही प्रायः 'पिंगल' शब्द का प्रयोग छन्द-शास्त्र के पर्यायवाची शब्द के रूप में होने लगा है।

इसके पश्चात् छन्द-शास्त्र के जिन ग्रन्थों का निर्माण हुआ, उनमें से तीन प्रमुख हैं—वृत्तरत्नाकर [लेखक—केदारभट्ट], छन्दोमंजरी (लेखक—गङ्गादास), श्रुतबोध (लेखक—कालिदास)। इनमें से 'श्रुतबोध' के निर्माता के विषय में ठीक प्रकार नहीं कहा जा सकता कि इसके निर्माता संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास हैं अथवा कोई अन्य। पर यह ग्रन्थ लोकप्रियता की दृष्टि से बड़े महत्त्व का रहा है।

छन्द के लक्षण उसी प्रकार के छन्द में बनाये गये हैं जिस प्रकार का कि वह छंद है। इस तरह लक्षण और उदाहरण एक ही पद्यांश में मिलते हैं।

हिन्दी-साहित्य में भी छंद-शास्त्र-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। जैसे—छन्दसारपिंगल (मतिरामकृत), वृत्तविचार (सुखदेवमिश्रकृत), छन्दप्रकाश (गिरधारीदासकृत), छंदमंजरी (पद्माकरभट्टकृत)। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त हिन्दी में छंद-शास्त्र-सम्बन्धी और भी बहुत-से ग्रन्थ लिखे गये हैं।

वर्तमान काल में इस प्रकार की अनेक कविताएँ लिखी गई हैं जो छंद के बन्धन में बँधी हुई नहीं हैं। स्वच्छन्द विचारों के कवियों ने अपनी स्वच्छन्दता की सीमा को विस्तृत करके छन्द-शास्त्र की सीमा का अतिक्रमण कर दिया। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार स्वतंत्र रूप से लिखी गई कविताएँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अतः आधुनिक काल के कवियों द्वारा निर्मित छंद-बंधन-रहित कविताओं को लोग मुक्त छंद में लिखित मानते हैं। इस प्रकार की नवीन कविता के निर्माण के साथ इस नवीनता का आना सर्वथा स्वाभाविक ही कहा जाएगा। साहित्य तो विकसित होता रहता है, फिर इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

दग्धाक्षर

छंद-शास्त्र की परम्परा के अनुसार ऐसी मान्यता है कि कुछ अक्षरों से छंद को प्रारंभ नहीं करना चाहिए। ऐसा प्रयोग अशुभ होता है। इन अशुभ अक्षरों में निम्नलिखित उन्नीस अक्षर आते हैं—

"ङ, झ, ञ, ट, ठ, ढ, ण, त, थ, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह।" इन अक्षरों में से भी पाँच अक्षर विशेष रूप से अशुभ माने गये हैं। वे ये हैं—झ, ह, र, भ, ष। इनको 'दग्धाक्षर' भी कहते हैं। दग्धाक्षरों के विषय में 'भानु' कवि का निम्नलिखित दोहा द्रष्टव्य है—

"दीजो भूलि न छन्द के, आदि झ ह र भ ष कोय।
दग्धाक्षर के दोष तें, छन्द दोष युत होय॥"

उपर्युक्त नियम का अपवाद भी है; और वह यह है कि यदि दग्धाक्षर मंगलकारी या देववाचक हो अथवा दीर्घ हो तो उसका दोष नहीं होता। जैसे—"हे मौन तपस्या लीन यती, पल भर को तो कर दृगोन्मेष।" यहाँ पर 'हे' दीर्घ है, अतः दग्धाक्षर का दोष नहीं है।

शुभ और अशुभ गण

गणों में मगण, नगण, भगण और यगण, ये चार शुभ गण हैं। जगण, रगण, सगण और तगण, ये चार अशुभ हैं। अशुभ गणों को छन्द के प्रारंभ में नहीं रखना चाहिए। जिस प्रकार दग्धाक्षरों के दोष का परिहार होता है, वैसे ही प्रारंभ में मंगलवाचक अथवा देववाचक शब्दों के होने से गण-दोष नहीं होता। जैसे—"मुकुन्द चाहे यदुवंश के बनें" में मुकुन्द में जगण है, पर कृष्ण का वाचक शब्द होने से यहाँ गण-दोष नहीं है।

वर्णिक छंद

१. विद्युल्लेखा (६ अक्षर)

लक्षण—दो मा विद्युल्लेखा (इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं।)

उदाहरण—"चन्दा मामा आ जा, रोटी पानी खा जा।"

२. सोमराजी (आठ अक्षर)

लक्षण—मा मा गा गा विद्युन्माला (दो मगण, अंत में दो गुरु।)

उदाहरण—"आओ प्यारे वीरो आओ।"

३. विद्युन्माला (छः अक्षर)

लक्षण—य दो सोमराजी (दो यगण)

उदाहरण—"गुनो एक रूपी, सुनो वेद गावैं।
महादेव जाको, सदा चित्त लावैं॥"

४. भुजगशशिभृता (नौ अक्षर)

लक्षण—भुजगशशिभृता नन्मा (दो नगण और एक मगण)

उदाहरण— "दुख पर दुख भी पाओ, पर सत पथ ही जाओ।
भव भय हर को ध्याओ, अनत न चित ले जाओ॥"

५. चम्पकमाला (दस अक्षर)

लक्षण—चम्पकमाला है भ म सा गा (भगण, मगण, सगण, गुरु)

उदाहरण—"रात नहीं तो दीपक सूना, प्रेम नहीं तो जीवन सूना।"

६. शालिनी (११ अक्षर)

लक्षण—मा ता ता गा गा युता शालिनी (मगण, दो तगण, दो गुरु)

उदाहरण—"कैसी-कैसी ठोकरें खा रहा है, तीखी पीड़ा चित्त में पा रहा है।
तो भी प्यारे हाल तेरा वही है, विद्वानों की पद्धति क्या यही है॥"

७. भुजंगी (११ अक्षर)

लक्षण—त्रि या औ ल गा सौं भुजंगी रचौ (तीन यगण, लघु, गुरु)

उदाहरण—"यही वाटिका थी, यही थी मही, यही चन्द्र था, चाँदनी थी यही।
यही वल्लरी मैं लिए गोद में, उसे छेड़ती थी महामोद में॥"

८. इन्द्रवज्रा (११ अक्षर)

लक्षण—हो इन्द्रवज्रा त त जा ग गा सों (तगण, तगण, जगण, दो गुरु)

उदाहरण—"मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ, भाता मुझे सो नव मित्र-सा है।"

९. उपेन्द्रवज्रा (११ अक्षर)

लक्षण—उपेन्द्रवज्रा ज त जा ग गा सों (जगण, तगण, जगण, दो गुरु)

उदाहरण—"बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै, परन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा, कभी न अच्छा परिणाम होगा॥"

१०. भुजंगप्रयात (१२ अक्षर)

लक्षण—भुजंगप्रयाता बने चार या सों (चार यगण)

उदाहरण—"महामीचु दासी सदा पाँइ धोवै, प्रतिहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हें रहैं छत्र जाको, करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥"

११. द्रुतविलंबित (१२ अक्षर)

लक्षण—द्रुतविलम्बित माँहि न भा भ रा (नगण, भगण, भगण, रगण)

उदाहरण—"इधर गोकुल से जनता कढ़ी, उमगती पगती अति मोद में।
उधर आ पहुँची बलबीर की, विपुल-धेनु-विमंडित मण्डली॥"

१२. तोटक (१२ अक्षर)

लक्षण—विलसै सचतुष्टय तोटक में (स, स, स, स)

उदाहरण—"हनुमत्त बली तुम जाहु तहां। मुनि वेश भरत्त बसत्त जहां॥"

१३. वंशस्थ (१२ अक्षर)

लक्षण—लसै सुवंशस्थ ज ता ज रा शुभा (जगण, तगण, जगण, रगण)

उदाहरण "लिये हथेली सम गात-पत्र में, बड़े अनूठे फल श्याम रंग के।
सदा खड़ा स्वागत के निमित्त था, प्रफुल्लितों सा फलवान फालसा॥"

१४. वसन्ततिलका (१४ अक्षर)

लक्षण—जानो वसन्ततलिका त भा जा ज गा गा।

वसन्ततलिका छन्द वहाँ होता है जहाँ पर तगण, भगण, जगण, जगण, गुरु, गुरु हो।

उदाहरण—"श्रीरामचन्द्र हंसि अंक लगाइ लीन्हों। संसार साक्षि शुभ पावक आनि दीन्हों॥
देवनि दुन्दुभि बजाइ सुगीत गाये। त्रैलोक लोचन चकोरिन चित्त भाये॥"

१५. मालिनी (१५ अक्षर)

लक्षण—न न म य य गणों से मालिनी सोहती है।

'मालिनी' में दो नगण, मगण और दो यगण होते हैं। आठवें वर्ण पर और अन्त में यति होती है।

उदाहरण—"निज मथित कलेजे को व्यथा साथ थामे।
कुछ समय यशोदा ने सुनी सर्व बातें ॥
फिर बहु विमना हो व्यस्त हो कंपिता हो।
निज-सुग्रन-सखा से यों व्यथा साथ बोलीं ॥"

१६. मन्दाक्रान्ता (१७ अक्षर)

लक्षण—मन्दाक्रान्ता म भ न त त गा गा कहें छन्दवेदी।

मन्दाक्रान्ता छन्द में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण गुरु और गुरु होते हैं। इस तरह प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं। इसमें चौथे, दसवें और सत्रहवें अक्षर के पश्चात् यति होती है।

उदाहरण—"आवेगों से विपुल विकला शीर्ण काया कृशांगी।
चिन्ता-दग्धा व्यथित हृदया शुष्क ओष्ठा अधीरा ॥
आसीना थीं निकट पति के अम्बु-नेत्रा यशोदा।
खिन्ना दीना विनत-वदना मोह-मग्ना मलीना ॥"

१७. शिखरिणी (१७ अक्षर)

लक्षण—कवीन्द्रों को मोहे य म न स भ ला गा शिखरिणी।

जहां पर यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु का क्रम प्रत्येक चरण में होता है,

वहाँ 'शिखरिणी छन्द होता है। इसमें सत्रह अक्षर होते हैं और छठे और सत्रहवें अक्षर पर यति का विधान है।

उदाहरण—"अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरभि से।
बना जो देती थी बहु गुणमयी भू विपिन को॥
निराले फूलों की विविध रंग वाली अनुपमा।
जड़ी बूटी हो हो बहु फलवती थीं विलसती॥"

१८. शार्दूलविक्रीडित (१६ अक्षर)

लक्षण—जा में हो म स जा स ता त ग, वही शार्दूलविक्रीडित।

जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु हो, वह 'शार्दूलविक्रीडित' होता है। इसके बारहवें और उन्नीसवें अक्षर पर यति होती है।

उदाहरण—"बोले वारिद-गात पास बिठला सम्मान से बन्धु को।
प्यारे सर्व विधान ही नियति का व्यामोह से है भरा॥
मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था।
पाता हूँ अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्त्तव्य में॥"

१६. मदिरा (सवैया) (२२ अक्षर)

लक्षण—सात भकार गकार जबै तव पिंगलवेदि कहें मदिरा।

जिस छन्द में सात भगण हों और अन्त में एक गुरु हो तो 'मदिरा' छन्द होता है।

उदाहरण—"छांडि दियो हम ही बनरा, वह पूंछ की आगिन लंक जरी।
भीर में अक्ष मर्यो चपि बालक, बादिहि जाय प्रशस्ति करी॥
साल बिधे अरु सिंधु बंध्यो, यह चेटक विक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा, पल में सुरनायक बांधि लियो॥"

२०. मत्तगयन्द (सवैया) (२३ अक्षर)

लक्षण—सात भकार गुरु युग हों जब मत्तगयन्द कहें तब ताको।

मत्तगयन्द छन्द के प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण— "पेट चढ्यौ पलना पलका चढ़ि, पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यो चित्रसारि चढ्यौ, गज बाजि चढ्यो गढ़ गर्व चढ्यो रे॥
व्योम विमान चढ्योइ रह्यौ, कहि केशव सो कबहूं न पढ्यो रे।
चेतत नाहि रह्यो चढ़ि चित्त, सो चाहत मूढ़ चिता हू चढ्यो रे॥"

२१. मुन्दरी (सवैया) (२५ अक्षर)

लक्षण—सगणाष्टक अंत गुरु युत हों, तब 'सुन्दरि' छन्द बनै सुखदानी।
जिस छन्द में आठ सगण हों और अन्त में गुरु हो तो वह 'सुन्दरी सवैया' छन्द होता है।

उदाहरण—"भुव भारहि संयुत राकस को, गण जाय रसातल में अनुराग्यो।
जग में जय शब्द समेतहि केसव, राज विभीषण के सिर जाग्यो॥
मय दानव नन्दिनि के सुख सों, मिलि कै सिय के हिय को दुख भाग्यो।
सुर दुन्दुभि सीस गजा सर राम को रावण के सिर साथहि लाग्यो॥"

२२. घनाक्षरी (३१ अक्षर)

लक्षण—घनाक्षरी छन्द में ३१ वर्ण होते हैं। सोलहवें अक्षर पर और इकतीसवें अक्षर पर यति होती है। इस छन्द को 'कवित्त' भी कहते हैं।

उदाहरण—"झीनी सी झंगुली बीच झीनो आंगु झलकत, झुमर झुमर झुक ज्यों ज्यों झूलं पालना।
घूंघरू घुमक बने घुंघरा के छोर घने, घुंघरारे बार मानो अलिबारे चलना।
आलम रसाल जुग लोचन विसाल लोल, ऐसे नन्दलाल अनदेखे कहूं कल ना।
बार बार हेर हेर टेर टेर फेर फेर, घेर घेर गावं गुन गोकुल की ललना॥"

२३. रूपघनाक्षरी (मुक्तक दण्डक) (३२ अक्षर)

लक्षण—रूपघनाक्षरी छन्द में ३२ वर्ण होते हैं। इसके सोलहवें वर्ण पर और फिर अंत में यति होती है। अंत के वर्ण गुरु और लघु होते हैं।

उदाहरण—"कौन सा दिखाऊँ दृश्य वन का बता मैं आज ? हो रही है आलि, मुझे चित्र रचना की चाह।
नाला पड़ा पथ में, किनारे जेठ जीजी खड़े, अम्बु अवगाह आर्यपुत्र ले रहे हैं थाह ॥
किंवा वे खड़ी हों घूम प्रभु के सहारे आह, तलवे से कण्टक निकालते हों ये कराह ?
अथवा झुकाये खड़े हों ये लता और जीजी, फूल ले रही हों, प्रभु दे रहे हों वाह वाह !"

२४. देवघनाक्षरी (मुक्तक दण्डक) (३३ अक्षर)

लक्षण—देवघनाक्षरी के प्रत्येक चरण में ३३ वर्ण होते हैं। अन्तिम तीन वर्ण लघु होते हैं। आठ-आठ अक्षरों के बाद यति होती है, किन्तु चरण के अंत में ६ अक्षर होते हैं।

उदाहरण—"झिल्ली झनकारें पिक, चातक पुकारें बन, मोरनि गुहारें उठें, जुगनू चमकि-चमकि।
घोर घनघोर भोर धुरवा धुरारे धाम, धूमनि मचावें नाचें दामिनी दमकि-दमकि ॥
भूकनि बयार बहै लूकनि लगावें अंक, हूकनि भभूकनि की उर में खमकि-खमकि।
कैसे करि राखौं प्राण प्यारे जसवन्त बिन, नान्हीं नान्हीं बूंद झरैं मेघवा झमकि-झमकि ॥"

मात्रिक छन्द

१. तोमर (बारह मात्राएँ)

लक्षण—द्वादश कल ग ल तोमर ।

तोमर के प्रत्येक चरण में बारह मात्राएँ होती हैं और अन्त में गुरु-लघु का क्रम होता है।

उदाहरण—"सुनि रामचन्द्र कुमार, धनु आनिये यहि बार ।
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव, यश लोक-लोक बढ़ाव ॥"

२. उल्लाला (तेरह मात्राएँ)

लक्षण—उल्लाला तेरह कला, एकादश इक लघु भला ।

उल्लाला के प्रत्येक चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं ; ग्यारहवीं मात्रा लघु होनी चाहिए।

उदाहरण—"जीवन में बस प्रेम हो, जिसका प्राणाधार हो ।
सत्य गले का हार हो, इतना उस पर प्यार हो ॥"

३. सखी (चौदह मात्राएँ)

लक्षण—चौदह कल सखी सुहावै, मा वा या अन्त सजावै ।

सखी छंद के प्रत्येक चरण में चौदह मात्राएँ होती है और अन्त में मगण अथवा यगण होता है।

उदाहरण—"छलना थी मेरी तो भी, उसमें विश्वास घना था।
उस माया की छाया में, मैं सच्चा स्वयं बना था॥"

४. चौपई

(पन्द्रह मात्राएँ)

लक्षण—तिथि कल सोहै चौपई छन्द, अंत गुरु लघु देत अनन्द।

चौपई में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं और चरण के अंत में क्रमशः एक गुरु तथा एक लघु होता है।

उदाहरण—"चहहु जु सांचो निज कल्यान, तो सब मिलि भारत-सन्तान!
जपहु निरन्तर एक जबान, हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥"

५. डिल्ला

(सोलह मात्राएँ)

लक्षण—डिल्ला मांहि लसें कल सोलह।

डिल्ला में सोलह मात्राएँ होती हैं और आठ-आठ मात्राओं पर यति होती है।

उदाहरण—"नर नारि सबं, भयभीत तबं। अचरज्जु यहै, सब देखि कहै॥"

६. चौपाई

(सोलह मात्राएं)

लक्षण—कल सोलह ज त अन्त न दीजै।

चौपाई छंद के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। इसमें चरण के अन्त में यगण और तगण नहीं होने चाहिएँ।

उदाहरण—"बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥"

७. अरिल्ल (सोलह मात्राएँ)

लक्षण—कहहिं अरिल्ला सोलह कल युत।

अरिल्ल छन्द में सोलह मात्राएँ होती हैं। अंत में यगण होता है या दो लघु होते हैं। इस छंद में जगण नहीं होता।

उदाहरण—"देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय॥
राजति रति की सखी सुबेषिन। मनहु बहति मनमथ संदेशनि॥"

८. रूपमाला (चौबीस मात्राएँ)

लक्षण—रूपमाला छंद में चौबीस मात्राएँ होती हैं। इसमें चौदहवीं मात्रा पर तथा पादान्त में यति होती है। चरण के अन्त में गुरु और लघु का क्रम होता है।

उदाहरण—"गोद में लेकर कभी यदि ईश करते प्यार। खेलता था पन्नगों से सुन अभय फुंकार॥
पकड़ने को भाल का विधु बढ़ाता लघु हाथ। स्नेह-निर्भर शम्भु सुख से झुकाते निज माथ॥"

९. राधिका (बाईस मात्राएँ)

लक्षण—राधिका छन्द में बाईस मात्राएँ होती हैं। इसमें तेरहवीं और बाईसवीं मात्राओं पर यति होती है।

उदाहरण—"चल चपल कलम निज चित्रकूट चल देखें, प्रभु चरण चिह्न पर सफल भाल लिपि लेखें।
सम्प्रति साकेत समाज वहीं है सारा, सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा ॥"

१०. रोला
(२४ मात्राएँ)

लक्षण—रोला में चौबीस कला, यति ग्यारह तेरा।

रोला छंद के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं और ग्यारह-तेरह पर यति होती है।

उदाहरण—"बोले विधि मुनिनाथ, हृदय गति क्या बतलाऊँ।
कन्या विषम वियोग जलधि किस विधि तरपाऊँ ॥"

११. गीतिका
(२६ मात्राएँ)

लक्षण—रत्न रवि कल धारि कै ल ग अन्त रचिये गीतिका।

गीतिका छन्द में २६ मात्राएं होती हैं। १४ और १२ पर यति होती है और अन्त में लघु गुरु होते हैं।

उदाहरण—"साधु भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे,
सभ्यता की सीढ़ियों पै सूरमा चढ़ने लगे।
वेद मन्त्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे,
वञ्चकों की छातियों में, शूल से गढ़ने लगे ॥"

१२. हरिगीतिका (२८ मात्राएँ)

लक्षण—शृङ्गार भूषण अन्त ल ग जन गाइये हरिगीतिका।

'हरिगीतिका' छन्द में २८ मात्राएँ होती हैं; १६, १२ पर यति होती है तथा अन्त में लघु गुरु होते हैं।

उदाहरण—"रघुवंश भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्री रघुबर हरै॥"

१३. सार (२८ मात्राएँ)

लक्षण—सोरह बारह अन्तै द्वै गुरु, 'सार' छन्द बहु नीको।

'सार' छन्द के प्रत्येक चरण में अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं और सोलहवीं तथा अट्ठाईसवीं मात्राओं पर यति होती है। चरण के अन्त में दो गुरु अक्षर होते हैं।

उदाहरण—"कालीदह में तू क्यों कूदा, डाँटा तो हँस बोला।
तू कहती थी और चुराना, तू मक्खन का गोला॥
छींके पर रख छोड़ेंगे सब, अब भिड़-भरा मठोला।
निकल उड़ीं वे भिड़ें प्रथम ही, भाग बचा मैं भोला॥"

१४. मरहटा (२९ मात्राएँ)

लक्षण—मरहटा अंत ग ल, दस आठ तथा ग्यारह पर यति होत।

मरहटा छंद में २९ मात्राएँ होती हैं। इसमें १०, ८ और ११ पर यति होती है। अंत में गुरु और लघु का क्रम होता है।

उदाहरण—"यह सुनि गुरु बानी, धनु गुन तानी, जानी द्विज सुखदानि।
ताड़का संहारी, दारुण भारी, नारी अति बल जानि॥
मारीच बिडार्‌यो, जलधि उतार्‌यो, मार्‌यो सबल सुबाहु।
देवन गुण पर्‌यो, पुष्पन बर्‌यो, हर्‌यो अति सुरनाहु॥"

१५. वीर (आल्हा) (३१ मात्राएँ)

लक्षण—वीर छन्द में ३१ मात्राएँ होती हैं। १६ और १५ पर यति होती है तथा अन्त में गुरु और लघु का क्रम होता है।

उदाहरण—"पटक पादुका पहनो प्यारे! बूट इटाली का लुकदार।
डालो डबल वाच पाकट में, चमके चेन कंचनी तार॥
रख दो गाँठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में मार।
मुरली तोड़-मरोड़ बजाओ, बाँकी बिगुल सुने संसार॥"

१६. बरवै (१२,७ मात्राएँ)

लक्षण – विषमनि रवि कल बरवै, सम मुनि साज।

बरवै छन्द के पहले और तीसरे चरण में बारह (रवि) मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में सात (मुनि) मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—"अवधि शिला का उर पर, था गुरु भार।
तिल-तिल काट रही थी, दृग जल धार॥"

१७. अतिबरवै (१२,९ मात्राएँ)

लक्षण —विषमनि रवि अतिबरवै, सम कल निधि साज।

इस छंद के विषम (प्रथम और तृतीय) चरणों में बारह-बारह और सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) चरणों में नौ-नौ मात्राएँ होती है।

उदाहरण —"कवि समाज को बिरवा, भल चले लगाय।
सींचन की सुधि लीजो, कहुँ मुरझि न जाय॥"

१८. दोहा (१३,११ मात्राएँ)

लक्षण – जान विषम तेरह कला, सम शिव दोहा मूल।

दोहा छंद के पहले और तीसरे चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं, तथा दूसरे और चौथे चरण में

ग्यारह मात्राएँ होती हैं। विषम चरणों अर्थात् पहले और तीसरे के आदि में जगण नहीं होना चाहिए।

उदाहरण—"राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु॥"

१९. सोरठा

(११,१३ मात्राएँ)

लक्षण—सम तेरह विषमेश, दोहा उलटा सोरठा।

सोरठा दोहे का उलटा होता है। इसके सम चरणों में तेरह मात्राएँ और विषम चरणों में ग्यारह मात्राएँ होती हैं। सोरठे के सम चरणों में जगण नहीं होता।

उदाहरण—"जो सुमरित सिधि होइ, गन नायक करिबर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन॥"

२०. कुंडलिया

(२४ मात्राएँ)

लक्षण—दोहा रोला कुंडजित कर कुंडलिया होय।

दोहा और रोला छंद को मिला देने से कुंडलिया छंद बनता है। इसमें दोहे का चौथा पाद रोला के प्रथम पाद के प्रारम्भ में आता है। जो अक्षर कुंडलिया के प्रारंभ में होता है, वही इसके अंत में होता है। इस तरह कुंडलिया में छः चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं। [दोहे में भी चौबीस मात्राएँ होती हैं और रोला में भी।]

उदाहरण—"गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुने सब कोय ॥
शब्द सुने सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोउन को इक रंग, काग सब भये अपावन ॥
कह गिरधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिन गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ॥"

(२४,२८ मात्राएँ)

२१. छप्पय

लक्षण—रोला के पद चार, मत चौबीस धारिये। उल्लाला पद दोय, अन्त माहीं सुधारिये ॥
'छप्पय' में पहले रोला के चार चरण होते हैं, उसके बाद 'उल्लाला' की दो पंक्तियाँ होती हैं।

उदाहरण—"बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण।
केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध सब अशुभ निवारण ॥
भारद्वाज जावालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि।
विश्वामित्र पवित्र चित्रमति वामदेव पुनि ॥
सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठमति, तहँ बशिष्ठ पूजत कलस।
शुभ सतानन्द मिलि उच्चरत, शाखोच्चार सबै सरस ॥"

मिलिन्द पाद

जिन छन्दों में उसी छंद के चार चरणों के पश्चात् दो चरण और जोड़कर उसे छः चरणों का छंद बना दिया जाता है, उसे मिलिन्दपाद कहते हैं। 'मिलिन्द' का अर्थ है भौंरा। भौंरे को षट्पद कहते हैं, उसके छः पैर होते हैं। अतः जिस छंद में मिलिन्द (षट्पद) के समान छः पाद होते हैं, वह 'मिलिन्दपाद' कहलाता है। इस प्रकार मिलिन्दपाद कोई अलग छंद नहीं है। जिस छंद के चार चरणों के आगे दो चरण और जोड़कर लिखे जाते हैं, उसी के नाम के आगे मिलिन्दपाद और लिख दिया जाता है। जैसे-- भुजङ्गप्रयात छंद के चार चरणों के पश्चात् वैसे ही दो चरण जोड़ने पर उसे 'भुजङ्गप्रयात मिलिन्दपाद' कहेंगे। मिलिन्दपाद वर्णिक और मात्रिक, दोनों प्रकार के छंदों में होते हैं।

(१२ अक्षर)

वर्णिक छन्द— भुजङ्गप्रयात मिलिन्दपाद

"अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है,
किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है।
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा,
किसी काल में नाश मेरा न होगा।
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा,
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥"

इस छंद का प्रत्येक चरण भुजङ्गप्रयात छन्द का है। चार से अधिक दो चरण और जोड़ दिये गये हैं, अतः यह भुजङ्गप्रयात मिलिन्दपाद हो गया।

मात्रिक छन्द — सार मिलिन्दपाद (२८ मात्राएँ)

"भाव राशि के रूप राशि के, अभिनव साँचे ढाली।
नवरस मय यौवन तरङ्ग की, लेकर छटा निराली॥
मञ्जु अलङ्कारों से सजकर, जगमग-जगमग करती।
कोमल कलित ललित छन्दों के, नूपुर पहन थिरकती॥
गजगामिनि! अनुपम शोभा की, दिव्य विभा दरसाओ।
छम-छम करती हृदय कुञ्ज में, आओ! कविते आओ॥"

उपर्युक्त छन्द का प्रत्येक पाद 'सार' छन्द के लक्षणों के अनुसार है। सार छंद में अट्ठाईस मात्राएँ होती हैं और सोलह, बारह पर यति होती है। इन चरणों में सार छन्द के चार के स्थान पर छः चरण हैं, अतः यहाँ पर 'सार मिलिन्दपाद' है।

प्रत्यय

'प्रत्यय' का अर्थ है ज्ञान। छंद-शास्त्र में प्रत्यय से तात्पर्य उस उपाय से है, जिसके द्वारा छंदों के विविध रूपों तथा संख्या आदि का ज्ञान हो सके। ऐसे प्रत्यय अनेक प्रकार के हैं। उनमें से मुख्य प्रत्यय चार हैं—संख्या, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट।

संख्या प्रत्यय

इसके द्वारा छंदों की किसी जाति के भेदों की संख्या का ज्ञान होता है। वर्णिक और मात्रिक, दोनों प्रकार के छंदों में उनके रूपों को जानने की पृथक्-पृथक् रीतियाँ हैं।

वर्णिक छन्दों के रूपों की संख्या जानने की विधि—सबसे पहले वर्णिक छन्द के वर्णों की संख्या ज्ञात कीजिए। मान लीजिये, वह संख्या आठ है। अब उतनी ही संख्याएँ १, २, ३ के क्रम से एक पंक्ति में लिख लीजिए। फिर प्रथम पंक्ति के १ के नीचे दूसरी पंक्ति में २ लिखिए। प्रथम पंक्ति के २ के नीचे ४ लिखिए और इस प्रकार दूसरी पंक्ति के अंकों को दूना करते जाइये। अंत में जो संख्या आएगी, वही आठ वर्णों के छंद के रूपों की संख्या होगी।

उदाहरण— (आठ वर्णों का छंद)

वर्ण-संख्या—	१	२	३	४	५	६	७	८
रूप-संख्या—	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६

(आ) **मात्रिक छन्दों के रूपों की संख्या जानने की विधि**—सबसे पहले मात्रिक छन्द की मात्राओं की संख्या ज्ञात कीजिए। मान लीजिए, वह ग्यारह है। उतनी संख्याएँ एक पंक्ति में क्रमानुसार लिख लीजिए। इसके पश्चात् प्रथम पंक्ति के एक के नीचे एक लिखिए, प्रथम पंक्ति के दो के नीचे दो, और तीन के नीचे तीन लिखिए। फिर प्रथम पंक्ति के चार के नीचे चार से पहली दो संख्याओं (३+२) को जोड़कर पाँच लिखिए। इसी तरह ऊपर के पाँच के नीचे उससे पहल दो संख्याओं ५+३ को जोड़कर आठ लिखिए। इसी तरह आगे करें। अंत में जो संख्या आएगी, वही मात्रिक छन्द की संख्या का रूप होगा।

उदाहरण— **(११ मात्राओं का छन्द)**

मात्रा-संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
रूप-संख्या	१	२	३	५	८	१३	२१	३४	५५	८९	१४४

प्रस्तार प्रत्यय

प्रस्तार के द्वारा छंद के सब रूपों का ज्ञान होता है। यह दो प्रकार का होता है—वर्ण प्रस्तार और मात्रा प्रस्तार।

(अ) **वर्ण प्रस्तार**—जितने वर्णों का प्रस्तार ज्ञात करना है, उतने गुरु प्रथम पंक्ति में रख लीजिए। दूसरी पंक्ति में सबसे पहले गुरु के सामने लघु रखिए और शेष प्रथम पंक्ति के चिह्नों को ही उतार लीजिए। तीसरी पंक्ति को इस प्रकार भरिए कि दूसरी पंक्ति के सर्वप्रथम गुरु के सामने लघु

हों। इसी प्रकार चौथी, पाँचवी, छठी आदि पंक्तियाँ भरते चले जाइए, जब तक कि अंत में सब लघु न हो जायें। जितनी पंक्तियाँ बनें, उतने ही रूप समझने चाहिएँ।

उदाहरण— (चार वर्णों वाले छंद का प्रस्तार=१६ रूप)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ	।
ऽ	ऽ	।	।	ऽ	ऽ	।	।	ऽ	ऽ	।	।	ऽ	ऽ	।	।
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	।	।	।	।	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	।	।	।	।
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	।	।	।	।	।	।	।	।

(आ) **मात्रा प्रस्तार**—जितनी मात्राओं के छंद का प्रस्तार बनाना है, उतनी मात्राएँ जितनें गुरुओं में आ सकती हैं, उतने गुरु प्रथम पंक्ति में रख लीजिए। यदि संख्या विषम है तो पंक्ति के प्रारंभ में एक लघु जोड़ दीजिए। जैसे यदि संख्या चार है, तो दो गुरु (ऽ ऽ) से काम चल जाएगा। यदि संख्या पाँच है तो दो गुरुओं से पहले एक लघु और रखिए। जैसे— । ऽ ऽ

मात्रा प्रस्तार की दूसरी पंक्ति वर्ण प्रस्तार की तरह ही भरिए अर्थात् प्रथम गुरु के नीचे लघु चिन्ह रखिए और शेष को ऊपर जैसा उतार लीजिए। इस लघु के बाईं ओर गुरु रख दीजिए। कभी-कभी इस गुरु को रख देने से भी मात्राएँ पूरी नहीं होतीं तो जितनी कमी हो, उतने ही लघु बाईं ओर बढ़ा दीजिए। यदि बाईं ओर गुरु रखने से मात्रा बढ़ती हों तो लघु ही रखें और फिर भी बढ़ती हों तो बाईं ओर कुछ न रखें। जैसे पाँच मात्राओं के प्रस्तार में तीसरा रूप इस प्रकार बनता है—(। । । ऽ)। इसके नीचे ऽ ऽ। रखने से पाँच मात्राएँ पूरी हो जाती हैं, अतः प्रथम लघु के नीचे कुछ भी नहीं रखना पड़ता। इस तरह जब सब मात्राएँ लघु रह जाएँ तो प्रस्तार स्पष्ट हो जाता है।

उदाहरण—	१.	। ऽ ऽ	२.	ऽ । ऽ
(पाँच मात्राओं	३.	। । । ऽ	४.	ऽ ऽ ।
का प्रस्तार)	५.	। । ऽ ।	६.	। ऽ । ।
	७.	ऽ । । ।	८.	। । । । ।

नष्ट प्रत्यय

जिस प्रत्यय की सहायता से, बिना प्रस्तार किए ही, वर्णिक अथवा मात्रिक छन्द के किसी भी रूप का पता लगाया जा सके, उसे नष्ट प्रत्यय कहते हैं। इस प्रत्यय से यदि हम चाहें कि अमुक छन्द का दसवाँ या बारहवाँ रूप क्या होगा, तो पता चल जाता है। यह भी दो प्रकार का होता है—वर्णिक-नष्ट और मात्रिक-नष्ट।

(अ) **वर्णिक-नष्ट**—मान लीजिए, हमें ४ वर्णों के छन्द का दसवाँ रूप नष्ट प्रत्यय की सहायता से निकालना है। पहले यह देखिए कि १० की संख्या सम है या विषम। सम के लिए लघु और विषम के लिए गुरु का प्रयोग कीजिए। अतः पहले १० के सम होने से लघु रखा जाएगा। अब इस सम संख्या दस को दो से भाग देकर फिर देखिए कि भजनफल सम है या विषम। १०÷२=५, पाँच विषम है; अतः पहले लघु, फिर गुरु, (। ऽ), ऐसा रूप बना। भजनफल ५ विषम है, उसमें १ जोड़कर ५+१=६ कर लीजिए। इसको दो से भाग देने पर ३ आया, जो विषम है। अतः तीसरा वर्ण भी गुरु हुआ। अब रूप ऐसा बना (। ऽ ऽ); इसके पश्चात् ३ विषम है। इसमें ३+१ और जोड़कर ४ सम संख्या बना लीजिए। चार को दो से भाग देने पर २ आया, जो सम है। अतः अगला रूप लघु वर्ण का होगा। इस तरह चार वर्णों के छन्द का दसवाँ रूप (। ऽ ऽ ।), इस प्रकार का निकल आया।

(आ) **मात्रिक-नष्ट**—सबसे पहले मात्रिक छन्द की मात्रा लीजिए, जिसका कि आपको नष्ट-रूप निकालना है। मान लीजिए, हमें पाँच मात्राओं के छन्द का छठा रूप निकालना है; तो पहले पाँच लघु चिन्ह एक पंक्ति में रख लीजिए। जैसे—

(। । । । ।)

इसके पश्चात् संख्या प्रत्यय के अनुसार ५ मात्राओं के जितने-जितने रूप बनते हैं, उन्हें इन लघु चिन्हों के ऊपर रख दीजिए। जैसे—

१	२	३	५	८
।	।	।	।	।

इसके पश्चात् जितनी मात्राओं के छन्द का नष्ट रूप पूछा गया है, उस छन्द की मात्राओं के रूपों से उस नष्ट प्रत्यय की संख्या घटा दीजिए। पाँच मात्राओं के छन्द के ८ रूप बनते हैं। उनमें से नष्ट प्रत्यय का छठा रूप पूछना है, अतः ८ में से ६ घटा दीजिए ८—६=२; अब यह देखिए कि लघु चिन्हों के ऊपर लगाए गए रूपों में से कौन-सा २ में से घट सकता है? जो घट जाए उसके नीचे गुरु और न घटने वाले के नीचे लघु लगाइए। अब ८, ५ और ३ तो २ में से घट नहीं सकते, अतः इनके नीचे लघु चिन्ह लगेगा। २ घट सकता है, उसके नीचे गुरु लगेगा और फिर १ रह गया; उसे भी नहीं घटाया जा सकता, क्योंकि २ में से २ पूरा घटकर शेष कुछ नहीं बचा। इस तरह यह रूप बना—

१	२	३	५	८
।	ऽ	।	।	।

अब गुरु चिन्ह के आगे का एक लघु चिन्ह मिटा दीजिए। इस तरह (।ऽ।।) यह रूप बना। यही पाँच मात्राओं के छन्द का छठा रूप है।

उद्दिष्ट प्रत्यय

जिस प्रत्यय के द्वारा, बिना प्रस्तार किए हुए ही, किसी बतलाए हुए रूप की संख्या का ज्ञान कर लिया जाय, वह उद्दिष्ट प्रत्यय होता है। किसी भी वर्णिक अथवा मात्रिक छन्द का कोई रूप देकर पूछा जाय कि यह उस छन्द के रूपों में किस संख्या का है, तो उद्दिष्ट प्रत्यय की सहायता से ज्ञात हो सकता है। यह भी दो प्रकार का होता है—वर्ण-उद्दिष्ट और मात्रा-उद्दिष्ट।

(अ) **वर्ण-उद्दिष्ट**—मान लीजिए, हमें ६ वर्णों के छन्द के ऽऽऽ।।ऽ इस रूप को ज्ञात करना है कि यह उस छन्द का कौन-सा रूप है? यह रूप हमारा उद्दिष्ट रूप है। पहले इसे लिख लीजिए—(ऽऽऽ।।ऽ)। इसके पश्चात् इन चिन्हों के ऊपर बाईं ओर से १, २, ४, ८ आदि दुगने करके अंक लिखिए। जैसे—

१	२	४	८	१६	३२
ऽ	ऽ	ऽ	।	।	ऽ

इनमें जितने लघु चिन्ह हैं, उनके ऊपर लिखे अंक जोड़ लीजिए—(८+१६=२४)। इसमें १ और जोड़

देने से २४+१=२५ हुआ। अतः हमारा उद्दिष्ट रूप ६ वर्णों वाले छन्द का पच्चीसवाँ रूप है।

(आ) मात्रा-उद्दिष्ट—जिस मात्रिक उद्दिष्ट की संख्या ज्ञात करनी हो, पहले उसे लिख लीजिए। जैसे हमें ६ मात्राओं के छन्द के ऽ ऽ । । इस रूप की संख्या ज्ञात करनी है। इस उद्दिष्ट रूप की मात्राएँ ६ हैं। अतः ६ तक के संख्या प्रत्यय के रूप लिख लीजिए। वे इस प्रकार हुए—१ २ ३ ५ ८ १३ आदि। इन्हें उद्दिष्ट रूप के ऊपर इस प्रकार लिखिए कि गुरु के ऊपर और नीचे दोनों तरफ आएँ और लघु के केवल ऊपर। जैसे—

१	३	८	१३
ऽ	ऽ	।	।
२	५		

अब गुरु के ऊपर की संख्याओं को जोड़कर ६ मात्राओं के प्रत्यय की संख्या में से घटा दो। इस प्रकार जो रूप आएगा, वही हमारे इस उद्दिष्ट रूप की संख्या होगी। अतः यहाँ १+३=४, इस ४ को १३ में से घटा दिया १३−४=९; यही हमारे उद्दिष्ट रूप की संख्या है।

हिन्दी अलंकार चार्ट

काव्य

पद्यात्मक रचना को 'काव्य' कहते हैं। साहित्य के पर्यायवाची शब्द के रूप में भी इसका प्रयोग होता है। अतः काव्य में कविता के साथ-साथ निबन्ध, आलोचना, नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवनी आदि को भी समाविष्ट किया जाता है।

काव्य की परिभाषा :—काव्य की परिभाषा विद्वानों ने नाना भाँति से की है। इनमें सबसे प्रचलित परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की है। उनके अनुसार रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानों के विचार भी द्रष्टव्य हैं।

दण्डी—अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाले सुविन्यस्त शब्द काव्य हैं।

मम्मट—दोष-रहित शब्दार्थ ही काव्य हैं।

जगन्नाथ—रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द काव्य हैं।

जॉनसन—काव्य छन्दोबद्ध रचना है।

कॉलरिज—सर्वोत्तम क्रम में विन्यस्त सर्वोत्तम शब्द ही काव्य हैं।

कार्लायल—काव्य एक उच्चरित संगीत है।

मैथ्यू आर्नल्ड—काव्य-विषयक सत्य और सौन्दर्य के नियमों द्वारा निश्चित स्थितियों में की गई जीवन की आलोचना काव्य है।

जॉन रस्किन—कल्पना द्वारा उच्च भावों के हेतु उच्च स्तर का निर्देश काव्य है।

काव्य का स्वरूप—काव्य से आनन्द की प्राप्ति उसका मुख्य प्रयोजन है। इसीसे काव्यानंद को ब्रह्मानंद-सहोदर कहा जाता है। काव्यानंद अलौकिक आनन्द होता है, अतः विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार उसके स्वरूप का निर्धारण किया है। रस काव्य की आत्मा है।

काव्य का प्रयोजन—प्रत्येक कार्य के पीछे कोई-न-कोई प्रयोजन निहित रहता है। काव्य की रचना के भी प्रयोजन होते हैं। काव्य-प्रयोजनों का स्पष्टीकरण भी विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार किया है। कुछ आचार्यों के मत द्रष्टव्य हैं—

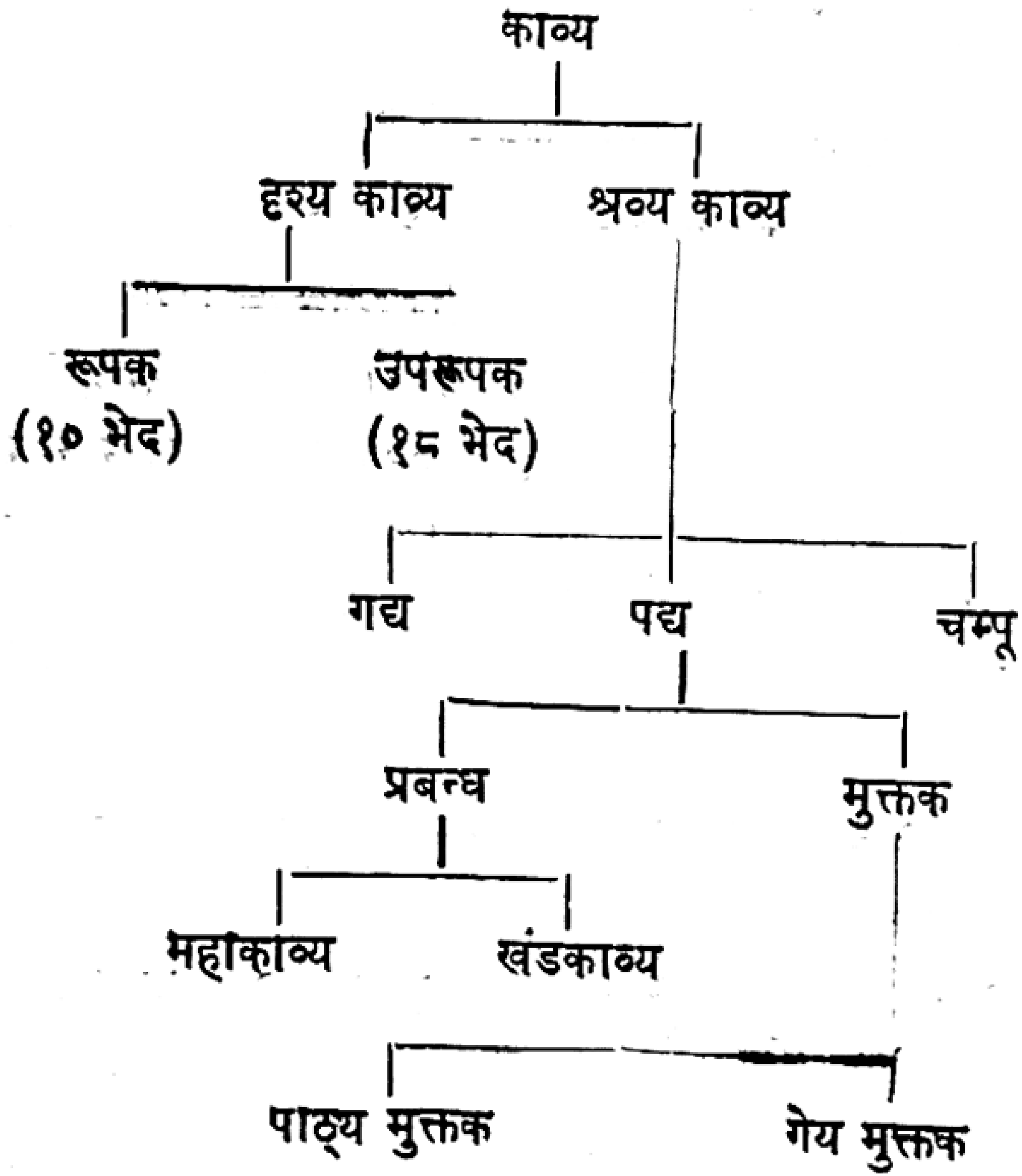
भरत—धर्म, यश और आयु का लाभ, कल्याण, बुद्धि-विकास और उपदेश, ये नाटक (काव्य) के प्रयोजन हैं।

भामह—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, काया में प्रीति, आनन्द और यश की प्राप्ति काव्य के प्रयोजन हैं।

मम्मट—यश, अर्थ, व्यवहार-कुशलता, अशिव का नाश, तात्कालिक आनन्द और कान्ता के समान उपदेश देना काव्य के प्रयोजन हैं।

कुन्तक—आनन्द या रसास्वाद काव्य का प्रयोजन है।

काव्य के भेद


काव्य
दृश्य काव्य
श्रव्य काव्य
रूपक
(१० भेद)
उपरूपक
(१८ भेद)
गद्य
पद्य
चम्पू
प्रबन्ध
मुक्तक
महाकाव्य
खंडकाव्य
पाठ्य मुक्तक
गेय मुक्तक

काव्य के भेद

काव्य के दो भेद होते हैं—(१) दृश्य काव्य, (२) श्रव्य काव्य।

दृश्य काव्य—जिस काव्य को देख कर आनन्द प्राप्त किया जाता है, उसे 'दृश्य काव्य' कहते हैं। नाटक को दृश्य काव्य कहते हैं। दृश्य काव्य के दो भेद होते हैं—रूपक और उपरूपक। जिस दृश्य काव्य में रस की प्रधानता रहती है, उसे रूपक कहते हैं और जिसमें नृत्य और नृत्त (वह नृत्य जिसमें केवल अंगों का विक्षेप किया जाये) की प्रधानता रहती है, उसे उपरूपक कहते हैं। रूपक के १० भेद माने गये हैं--(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) व्यायोग, (५) समवकार, (६) डिम, (७) ईहामृग, (८) अंक, (९) वीथी, (१०) प्रहसन। उपरूपक के १८ भेद माने गए हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्य-रासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

श्रव्य काव्य—जो काव्य पढ़े और सुने जा सकें उन्हें 'श्रव्य काव्य' कहते हैं। कविता, निबन्ध, आलोचना, उपन्यास, कहानी, जीवनी आदि सब श्रव्य काव्य हैं।

शैली के आधार पर काव्य के भेद—शैली के अनुसार काव्य के तीन भेद होते हैं—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) चम्पू।

१. **गद्य**—व्याकरण के नियमों के अनुसार साधारण रूप से लिखे हुए वाक्य को 'गद्य' कहते हैं। इसमें छन्द, लय आदि की आवश्यकता नहीं होती। जैसे 'उसने कहा था' कहानी गद्य में लिखी हुई है।

२. **पद्य**—छन्दोबद्ध रचना को 'पद्य' कहते हैं। जैसे—पद्मावत, रामचरितमानस आदि।

३. **चम्पू**—जिस रचना में गद्य और पद्य दोनों रूप होते हैं, उसे चम्पू कहते हैं। जैसे—यशोधरा।

पद्य-काव्य के दो भेद होते हैं—(१) प्रबन्ध, (२) मुक्तक।

१. **प्रबन्ध काव्य**—जिस काव्य में क्रमानुसार कोई कथा चलती हो, उसे 'प्रबन्ध काव्य' कहते हैं। जैसे तुलसी का 'रामचरितमानस', हरिऔध का 'प्रियप्रवास' आदि। प्रबन्ध काव्य के मुख्यतः दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य।

महाकाव्य—जिस प्रबन्ध काव्य में नायक के जीवन का विस्तृत चित्रण किया गया हो, उसे महाकाव्य कहते हैं। जैसे—तुलसी के 'रामचरितमानस' में राम की जीवन-कथा का विस्तृत वर्णन है। इसी प्रकार 'कामायनी', 'साकेत' आदि ग्रन्थ भी महाकाव्य हैं।

खण्डकाव्य—जिसमें नायक के जीवन के किसी एक अंश का वर्णन होता है, उसे 'खण्डकाव्य' कहते हैं। जैसे—मैथिलीशरण गुप्त की 'सिद्धराज', 'पंचवटी', 'जयद्रथ वध' आदि रचनाएँ।

२. **मुक्तक काव्य**—जिस काव्य के अलग-अलग छन्दों का अपने आप में पूर्ण अर्थ हो और पूर्वापर सम्बन्ध न हो उसे मुक्तक कहते हैं। जैसे—'बिहारी सतसई', 'कबीर के दोहे' आदि। मुक्तक काव्य के भी दो भेद होते हैं—(१) पाठ्य मुक्तक, (२) गेय मुक्तक।

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के भेद—इस दृष्टि से काव्य के तीन भेद होते हैं—

(१) उत्तम काव्य, (२) मध्यम काव्य, (३) अधम काव्य।

१. **उत्तम काव्य** :—जिस काव्य में अर्थ की रमणीयता का आधार उसमें व्यक्त व्यंजना हो, उसे 'उत्तम काव्य' कहते हैं। जैसे—

"निरख दुपहरी जेठ की छाहौं चाहत छांह।"

[इसमें स्वयंदूतिका नायिका की नायक को एकांत में ले चलने की अभिव्यक्ति है।]

२. **मध्यम काव्य** :—जिस काव्य में व्यंग्यार्थ की प्रधानता न होकर लक्षणा के आधार पर भाव-सौन्दर्य की वृद्धि होती है, उसे 'मध्यम काव्य' कहते हैं। जैसे—

"उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै,
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि सबै लगीं।"

३. **अधम काव्य**—जिस काव्य में शब्द-चमत्कार की ही प्रधानता होती है, उसे 'अधम काव्य' कहते हैं। जैसे—

"छोटे पद पाणि लाल छोटी अंगुरी हु लाल,
छोटे नख लाल छोटी रेखा लाल लाल हैं।"

रस

'रस' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है, जैसे—फल का जूस, शर्बत, शीरा, दूध, जल, आसव, रासायनिक भस्म, ऐन्द्रिय सुख आदि। काव्य में प्रयुक्त रस से तात्पर्य भावक की आनन्दात्मक चित्तवृत्ति से है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि काव्यानन्द को 'रस' कहते हैं।

रस की परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त स्थायीभाव को 'रस' कहते हैं। स्थायीभाव दस हैं, अतः रस भी दस हैं।

रस	स्थायीभाव	रस	स्थायीभाव
१. शृंगार	रति	२. हास्य	हास
३. करुण	शोक	४. रौद्र	क्रोध
५. वीर	उत्साह	६. भयानक	भय
७. वीभत्स	जुगुप्सा, घृणा	८. अद्भुत	आश्चर्य, विस्मय
९. शान्त	शम, निर्वेद	१०. वात्सल्य	वत्सल भाव, स्नेह

भाव—मन के विकारों को 'भाव' कहते हैं।

स्थायीभाव—कुछ भाव ऐसे होते हैं जो सब व्यक्तियों के मन में स्थित रहते हैं और समय आने पर प्रकट हो जाते हैं। इन्हें 'स्थायीभाव' कहते हैं। स्थायीभाव दस हैं।

विभाव—स्थायी भाव को रस की परिणति तक पहुँचाने वाले कारण 'विभाव' कहलाते हैं। विभाव के दो भेद हैं—(१) आलम्बन, (२) उद्दीपन।

आलम्बन—जिस वस्तु अथवा व्यक्ति को देखकर आश्रय के मन का स्थायी भाव जाग्रत होता है, उसे 'आलम्बन विभाव' कहते हैं। जैसे—"राम ने शेर को देखा, उसे देखकर उसके मन में भय के भाव जाग्रत हुए।" यहाँ 'राम' आश्रय है और 'शेर' आलम्बन।

उद्दीपन—जिन कारणों से आश्रय के मन के जाग्रत भाव और अधिक उद्दीप्त हो जायें, उन्हें 'उद्दीपन विभाव' कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में शेर यदि दहाड़ने लगे और पंजा उठाकर राम की ओर आने लगे तो राम के मन में भय का भाव और उद्दीप्त हो जायेगा। अतः यहाँ दहाड़ना और पंजा उठाना उद्दीपन विभाव हैं। उद्दीपन के दो भेद हैं—(१) आलम्बनगत (२) आलम्बन-बाह्य।

अनुभाव—विभाव कारण होते हैं और अनुभाव कार्य। उद्दीपन के पश्चात् आश्रय की स्थिति में जो प्रतिक्रिया होती है, उसे 'अनुभाव' कहते हैं। शेर की दहाड़ को सुनकर रंग पीला पड़ जाना, रोमांच हो जाना आदि कार्य अनुभाव के अन्तर्गत माने जायेंगे। अनुभाव के दो भेद हैं—(१) सात्त्विक, (२) कायिक।

सात्त्विक अनुभाव—बिना चेष्टा किये हुए, स्वतः शरीर पर हृदय के भावों का प्रकट होना सात्त्विक भावों की पहचान है। सात्त्विक भाव आठ होते हैं—(१) स्तम्भ, (२) स्वेद, (३) स्वरभंग, (४) रोमांच, (५) कम्प, (६) अश्रु, (७) वैवर्ण्य, (८) प्रलय।

विशेष—वात्सल्य रस में स्तनस्राव नवाँ सात्त्विक भाव होता है।

कायिक अनुभाव—शरीर के अंगों से जो चेष्टाएँ व्यक्त की जाती हैं, उन्हें 'कायिक अनुभाव' कहते हैं। चुम्बन, आलिंगन, भागना आदि कायिक अनुभाव हैं।

संचारीभाव—संचारी भाव कुछ क्षणों के लिए आते हैं और फिर विलीन हो जाते हैं। इन्हें 'व्यभिचारी भाव' भी कहते हैं। रस की पूर्ण निष्पत्ति पर संचारी भावों की स्थिति आती है। ये संख्या में ३३ हैं—१. निर्वेद २. ग्लानि ३. मद ४. मोह ५. विषाद ६. शंका ७. आलस्य ८. धैर्य ९. मति १०. उत्सुकता ११. असूया १२. उन्माद १३. स्वप्न १४. श्रम १५. त्रास १६. विबोध १७. निद्रा १८. आवेग १९. दैन्य २०. अवहित्थ २१. वितर्क २२. व्रीड़ा २३. चापल्य २४. गर्व २५. जड़ता २६. स्मृति २७. व्याधि २८. हर्ष २९. चिन्ता ३०. मृति ३१. अपस्मृति ३२. अमर्ष ३३. उग्रता।

शृंगार रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त रति स्थायीभाव को 'शृंगार रस' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) संयोग, (२) वियोग।

स्थायीभाव—रति।

विभाव—आलम्बन—नायक अथवा नायिका;

उद्दीपन—सस्नेह देखना, यौवन, एकान्त, रात्रि का समय।

अनुभाव—अपलक देखना, आलिंगन, स्वरभंग, प्रेम-चर्चा ।

संचारीभाव—हर्ष, औत्सुक्य, जड़ता, स्मृति आदि ।

उदाहरण—(अ) संयोग शृंगार—

"चितवत चकित चहूं दिस सीता,
कहं गये नृप किसोर मन चीता ।
लतन ओट तन सखिन दिखाए,
श्यामल गोर किसोर सुहाए ॥"

(आ) वियोग शृंगार—

"भूषन वसन विलोकत सिय के ।
प्रेम विवस मन कंप पुलक तन, नीरज नयन नीर भरे पिय के ।"

हास्य रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से परिपक्व हास स्थायी भाव को 'हास्य रस' कहते हैं ।

स्थायीभाव—हास ।

विभाव—(१) आलम्बन—विचित्र वेश भूषा से युक्त व्यक्ति, मूर्खता के कार्य आदि।
(२) उद्दीपन—हास्योत्पादक चेष्टाएँ।

अनुभाव—हँसना, मुसकराना, अंग-प्रत्यंग खिल उठना।

संचारीभाव—हर्ष, आलस्य, अवहित्थ (भाव-गोपन)।

उदाहरण—"काहुँ न लखा सो चरित विसेषा, सो सरूप नृपकन्या देखा।
मर्कट बदन भयंकर देही, देखत प्रकट क्रोध भा तेही॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली, सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली।
पुनि-पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं, देखि दसा हरगन मुसकाहीं॥"

करुण रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त शोक स्थायी भाव को 'करुण रस' कहते हैं।

स्थायीभाव—शोक।

विभाव—(१) आलम्बन—नाशोन्मुख प्रिय, दुःखातिरेक, मृत व्यक्ति आदि।
(२) उद्दीपन—प्रिय-वियोग का स्मरण, प्रिय-सम्बन्धी चर्चा, विलाप, शव आदि का दिखाई देना आदि।

संचारीभाव—स्मृति, चिन्ता, निर्वेद, विषाद, उन्माद, दैन्य, व्याधि, जड़ता आदि।

उदाहरण—"हा रघुनंदन प्रान पिरीते, तुम्ह बिन जिग्रत बहुत दिन बीते।
हा जानकी लखन हा रघुबर, हा पितु हित चित चातक जलधर॥
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह राउ गयउ सुरधाम॥"

विशेष—करुणा के पाँच भेद होते हैं—(१) करुण, (२) अतिकरुण, (३) महाकरुण, (४) लघु करुण, (५) सुखकरुण।

रौद्र रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त 'क्रोध' स्थायीभाव को 'रौद्र रस' कहते हैं।

स्थायीभाव—क्रोध।

विभाव—(१) आलम्बन—शत्रु, अनुचित बात कहने वाला व्यक्ति, अपराधी, अत्याचारी आदि।
(२) उद्दीपन—अपराधी के कठोर वचन, अपराध की पुनरावृत्ति, झूठ बोलना, अकड़ना आदि।

अनुभाव—मुख का लाल होना, दाँत पीसना, आत्म-प्रशंसा, गर्जना, कम्प, रोमांच आदि।

संचारीभाव—अमर्ष, मद, उग्रता, स्मृति, मोह आदि।

उदाहरण—"रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार ।
घनुही सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥"

वीर रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त उत्साह **स्थायीभाव** को 'वीर रस' कहते हैं।

स्थायीभाव—उत्साह।

विभाव—(१) आलम्बन—शत्रु, याचक, दीन, कठोर कार्य आदि।
(२) उद्दीपन—शत्रु का प्रभाव, याचक का दैन्य, दीन का कष्ट, कठोर कार्य के लिए स्वपक्ष की असमर्थता आदि।

अनुभाव—रोमांच, सत्कार, धैर्य दिलाना, तत्परता दिखलाना आदि।

संचारीभाव—गर्व, हर्ष, तर्क, दया, धृति, आवेग आदि।

उदाहरण—"आज जो हरिहि न शस्त्र गहाऊँ।
तो लाजौं गंगा जननी को शान्तनु सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि महारथी खंडौं कपिध्वज सहित डुलावौं।
इति न करौं सपथ मोहि हरि की छत्रिय गती न पावौं ॥"

विशेष—वीर रस के चार भेद माने गये हैं—(१) युद्धवीर, (२) दानवीर, (३) धर्मवीर, (४) दयावीर।

भयानक रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त भय स्थायीभाव को 'भयानक रस' कहते हैं।

स्थायीभाव—भय।

विभाव—(१) आलम्बन—भयानक वस्तु, सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु, श्मशान आदि निर्जन स्थान, अत्याचारी शत्रु, भूत-प्रेत आदि।

(२) उद्दीपन—भयानक जन्तुओं की चेष्टाएँ, सिंह का चिघाड़ना, भयंकर शत्रु का आगे बढ़ना, भयानक निर्जन में होना।

अनुभाव—कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य, रुदन, रोमांच, भागना व चिल्लाना आदि।

संचारीभाव—चिंता, मूर्च्छा, आवेग, दैन्य, मोह, जड़ता आदि।

उदाहरण—"बद्दल न होंहि दल दच्छिन घमंड माँहि,
घटा हु न होंय इभ सिवाजी हंकारी के।
दामिनी दमक नाँहि खुले खग्ग वीरन के,
इन्द्र धनु नाँहि ये मिसान हैं सवारिन के॥"

बीभत्स रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त जुगुप्सा स्थायीभाव ही 'बीभत्स रस' में परिणत होता है।

स्थायीभाव—जुगुप्सा, घृणा।

विभाव—(१) आलम्बन—घृणित प्राणी या पदार्थ, दुर्गन्ध से युक्त पदार्थ, मल, मांस, मज्जा आदि।

(२) उद्दीपन—दुर्गन्ध, कीड़े पड़ना, मांस का खाना, पशु-पक्षियों का उसे उथल-पुथल करना आदि।

अनुभाव—थूकना, नाक बंद करना, मुंह फेर लेना आदि।

संचारीभाव—ग्लानि, व्याधि, मूर्च्छा, अपस्मार, चिन्ता, मोह आदि।

उदाहरण—"सिर पर बैठ्यो काग, आंख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनन्द उर धारत॥
गिद्ध जांघ कहँ खोदि, खोदि कै मांस उपारत।
स्वान आंगुरिन काटि, काटि कै खान विचारत॥"

अद्‌भुत रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त विस्मय स्थायीभाव 'अद्‌भुत रस' में परिणत होता है।

स्थायीभाव--विस्मय।

विभाव—(१) आलम्बन—विचित्र दृश्य, अनोखी वस्तु आदि।

(२) उद्दीपन—विस्मयकारी दृश्य का प्रत्यक्ष होना, इन्द्रजाल के कार्य, आश्चर्यजनक बातों का वर्णन आदि।

अनुभाव—नेत्र फाड़ना, दाँतों में उँगली देना, स्वेद, रोमांच, गद्‌गद वचन आदि।

संचारीभाव—तर्क, भ्रान्ति, हर्ष, शंका, चपलता, औत्सुक्य, जड़ता आदि।

उदाहरण—"**लीन्यो उखार पहाड़ विशाल चलो तिहि काल विलम्ब न लायो।
मारुतनन्दन मारुत को मन को खगराज को वेग लजायो॥**"

शान्त रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से अभिव्यक्त शम् स्थायीभाव 'शान्त रस' की पुष्टि को प्राप्त होता है।

स्थायीभाव—शम्, निर्वेद।

विभाव—(१) आलम्बन—संसार की सारहीनता, क्षणभंगुरता आदि।
(२) उद्दीपन—धर्म के उपदेश, सत्संग आदि।

अनुभाव—सात्त्विक भावों का उद्रेक, ईश्वर-भक्ति के लिए तत्परता, संसार से विरक्ति, मोक्ष, शास्त्र-चिन्ता आदि।

सचारीभाव—निर्वेद, मति, धृति, स्मृति आदि।

उदाहरण—"कहा रसखान सुख सम्पत्ति सुमार महा,
कहा महा जोगी है लगाये अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीन्हे धरा सिन्धु आर-पार को॥"

वात्सल्य रस

परिभाषा—विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से परिपक्व वात्सल्य-स्नेह स्थायी भाव 'वात्सल्य रस' की आस्वादात्मक अनुभूति कराता है।

स्थायीभाव—वात्सल्य-स्नेह (छोटों के प्रति प्रेम)।

विभाव—(१) आलम्बन—पुत्र, पुत्री, शिष्य और कोई भी शिशु आदि।
(२) उद्दीपन—शिशु का रूप, आकल्प (पहनावा), क्रीड़ा, कौतुक, तोतली बोली, हँसना, किलकना आदि।

अनुभाव—मुख चूमना, गोद में लेना, चुटकी बजाना, ऊपर उछालना, पास बुलाना, नचाना, हँसाना, चपत लगाना, खिलाना, पिलाना आदि ।

संचारीभाव--हर्ष, गर्व, स्मृति, चिन्ता, औत्सुक्य, आशंका, वितर्क, स्वप्न, दैन्य, जड़ता, आवेग आदि ।

उदाहरण—'मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन वन-सी फूल उठी यह, छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
'मां ओ' कह कर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुख में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने आई थी ॥"

विशेष—शृंगार की भाँति वात्सल्य रस की भी दो दशाएँ हैं—संयोग और वियोग ।

●

शब्द-शक्तियाँ

सार्थक शब्द ही वस्तुतः शब्द कहलाते हैं। निरर्थक ध्वनियाँ शब्द नहीं कहलातीं। जिस शक्ति द्वारा किसी शब्द के अर्थ का ज्ञान होता है, उसे 'शब्द-शक्ति' कहते हैं। शब्द शक्तियाँ तीन हैं—

(१) अभिधा, (२) लक्षणा, (३) व्यंजना ।

अभिधा—शब्द की प्रथम शक्ति अभिधा है। इसके द्वारा शब्द का मुख्य अर्थ जाना जाता है।

किसी शब्द का शब्द-कोशों में जो अर्थ होता है, वह अभिधा शक्ति के द्वारा ही लगाया जाता है। जैसे—पुस्तक, मोर आदि।

लक्षणा—जिस स्थान पर किसी शब्द का मुख्य अर्थ न लगाकर कोई दूसरा लाक्षणिक अर्थ लगाया जाता है, वहाँ पर लक्षणा शक्ति होती है। 'तुम गधे हो', ऐसा किसी मनुष्य से कहने पर गधे का अर्थ मूर्ख होगा। ऐसे स्थान पर लक्षणा शक्ति होती है।

व्यंजना—अभिधा और लक्षणा शक्ति से भी आगे जब तीसरे अर्थ का बोध होता है वहाँ व्यंजना शक्ति होती है। 'गंगा में गाँव है', इस वाक्य का लक्षणा से अर्थ होगा कि गंगा के तट पर गाँव है। इससे आगे एक अर्थ यह हो सकता है कि गाँव बड़ा शीतल और पवित्र है। यह अर्थ व्यंजना शक्ति से लगाया गया है।

लक्षणा और व्यंजना के भेद

लक्षणा—लक्षणा के दो भेद हैं—रूढ़ा और प्रयोजनवती।

रूढ़ा—मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि के आधार पर अर्थ लगाया जाय। जैसे—पंजाब साहसी है।

प्रयोजनवती—मुख्यार्थ के बाधित होने पर जहाँ किसी प्रयोजन से अर्थ लगाया जाय। जैसे—'गंगा में गाँव है' (सामीप्य का प्रयोजन)।

रूढ़ा और प्रयोजनवती, दोनों के दो-दो भेद और होते हैं—

(१) उपादान लक्षणा, (२) लक्षण लक्षणा।

उपादान लक्षणा—जहाँ अन्य अर्थ को लक्षित करते समय अपना अर्थ न छूटे, वहाँ उपादान लक्षणा होती है। इसे अजहत्स्वार्था भी कहते हैं। जैसे—सफेद दौड़ रहा है।

लक्षण लक्षणा—जहाँ शब्द अपना वाच्यार्थ छोड़कर केवल लक्ष्यार्थ को ही व्यक्त करे, वहाँ लक्षणलक्षणा होती है। इसे जहत्स्वार्था भी कहते हैं। जैसे—पेट में आग लगी है! (आग=ज़ोर की भूख)

उपादान लक्षणा और लक्षणलक्षणा (रुढ़ा और प्रयोजनवती) दोनों के दो-दो भेद और होते हैं—सारोपा, साध्यवसाना।

सारोपा—जिस लक्षणा में आरोप हो, उसे सारोपा कहते हैं। उपमेय और उपमान का अभेद होता है और दोनों को व्यक्त भी कर दिया जाता है। जैसे—श्वेत अश्व दौड़ता है।

साध्यवसाना—जहाँ आरोप के विषय को शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया गया होता। इसमें उपमेय का कथन नहीं होता। जैसे—श्वेत दौड़ते हैं। इसमें उपमेय (अश्व) का कथन नहीं है; जैसे कि सारोपा में होता है।

उपर्युक्त सभी भेदों के दो-दो भेद और होते हैं—गौणी और शुद्धा।

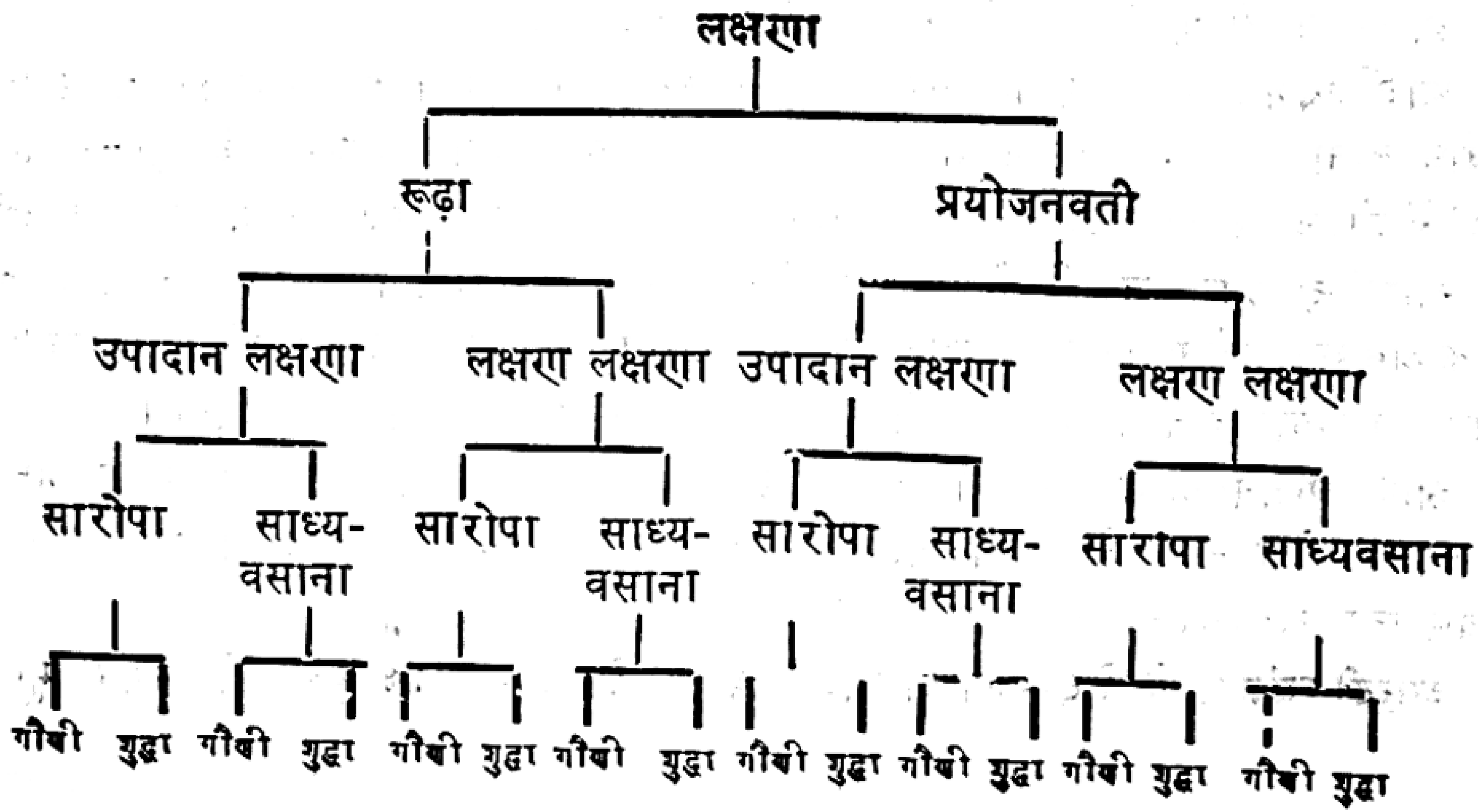
गौणी—गौणी लक्षणा में समान गुण के कारण लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है। जैसे—

उदाहरण—"**शिशिर न फिर गिरि वन में।**
जितना मांगे पतझड़ दूंगी मैं इस निज नंदन में॥"

शुद्धा—जहाँ गुण का सादृश्य न होने पर किसी अन्य कारण से लक्ष्यार्थ ग्रहण होता है, वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है। जैसे—

उदाहरण—"**अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।**
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥"

विशेष—यहाँ सामीप्य के कारण लक्ष्यार्थ लगाया गया है।



विशेष—प्रयोजनवती लक्षणा के आठों भेदों के दो-दो भेद और होते हैं—गूढ़ व्यंग्या और अगूढ़ व्यंग्या। इस तरह १६ भेद हुए। फिर इन सोलहों के दो-दो भेद और होते हैं—धर्मिगत और धर्मगत। इस प्रकार प्रयोजनवती के ३२ भेद होते हैं।

व्यंजना के भेद

व्यंजना के दो भेद हैं—आर्थी व्यंजना और शाब्दी व्यंजना।

आर्थी व्यंजना—जिस स्थान पर वक्ता, बोद्धव्य आदि की विशेषता के कारण उसके अनुकूल अर्थ का बोध होता हो, वहाँ पर अर्थमूलक या आर्थी व्यंजना होती है। जैसे—**'देख दुपहरी जेठ की छांहो चाहत छांह'** में बोद्धव्य के वैशिष्ट्य के कारण नायिका की नायक से एकान्त में चलने की इच्छा व्यंजित है।

शाब्दी व्यंजना—जब किसी शब्द के अनेक अर्थों में से संयोग, वियोग प्रकरण आदि के आधार पर उसी के अनुसार अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। जैसे, प्रकरण के अनुसार **'सैंधव'** का अर्थ खाना खाते समय नमक होगा और बाहर को तैयार होते समय घोड़ा।

आर्थी व्यंजना के भेद—आर्थी व्यंजना के दस भेद हैं जो वक्तृ, बोधव्य, काकु, वाच्य, अन्य-सन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल, चेष्टा और वाक्य-वैशिष्ट्य से प्राप्त होते हैं। इनके भी तीन प्रकार और होते हैं—वाच्यसंभवा, लक्ष्यसंभवा और व्यंग्यसंभवा।

शाब्दी व्यंजना के भेद—शाब्दी व्यंजना के दो भेद हैं—अभिधामूला और लक्षणामूला। इसमें

अभिधामूला के संयोग, वियोग, साहचर्य आदि १४ भेद होते हैं। लक्षणामूला किसी विशेष प्रयोजन के आधार पर होती है; जैसे 'गंगा में घर है' कहने से यह प्रयोजन है कि घर शीतल और पवित्र है।

व्यंजना

- आर्थी (१० भेद)
  1. वक्तृ वैशिष्ट्य
  2. बोधव्य वैशिष्ट्य
  3. काकु वैशिष्ट्य
  4. वाच्य वैशिष्ट्य
  5. अन्य सन्निधि वैशिष्ट्य
  6. प्रस्ताव वैशिष्ट्य
  7. देश वैशिष्ट्य
  8. काल वैशिष्ट्य
  9. चेष्टा वैशिष्ट्य
  10. वाक्य वैशिष्ट्य
- शाब्दी
  - लक्षणामूला
  - अभिधामूला (१४ भेद)

अलंकार

'अलंकार' का अर्थ है आभूषण या सजाना। काव्य में अलंकार से तात्पर्य काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म से है। (काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते) अलंकारों से काव्य की शोभा, जितनी पहले होती है उससे बढ़ती है। जहाँ शोभा है ही नहीं, वहाँ अलंकार-मात्र से शोभा-वृद्धि नहीं हो सकती। उपयुक्त रीति से प्रयुक्त हुए अलंकार किसी काव्य की शोभा को उसी प्रकार बढ़ाते हैं, जैसे सुन्दर अलंकार किसी स्त्री की शोभा को बढ़ा देते हैं।

अलंकारों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार, (३) उभयालंकार।

शब्दालंकार—जहाँ शब्दों द्वारा काव्य का सौन्दर्य बढ़ाया गया हो, वहाँ शब्दालंकार होते हैं। ये शब्दों द्वारा चमत्कार दिखलाते हैं।

अर्थालंकार—जहाँ अर्थ में चमत्कार दिखलाया गया हो, वहाँ अर्थालंकार होते हैं।

उभयालंकार—जहाँ शब्दों में भी चमत्कार हो और अर्थ में भी चमत्कार हो अर्थात् जब दोनों तरह से काव्य की शोभा बढ़ती हो तो वहाँ उभयालंकार होता है।

शब्दालंकार

१. अनुप्रास :—

लक्षण—'व्यंजन सम बरु स्वर असम अनुप्रास अलंकार।' अर्थात् जहाँ व्यंजनों की आवृत्ति हो,

उनके स्वर चाहे एक से हों अथवा न हों, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।

उदाहरण—"सुन सिय सत्य असीस हमारी।"

अनुप्रास के भेद

(अ) छेकानुप्रास : लक्षण—जहाँ एक या अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति हो।

उदाहरण—"सखि सोहत गोपाल कै उर गुंजन की माल।"

(आ) वृत्त्यनुप्रास : लक्षण—एक या अनेक वर्णों की कई बार आवृत्ति हो।

उदाहरण—"तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।"

(इ) श्रुत्यनुप्रास : लक्षण—जहाँ उन वर्णों की आवृत्ति हो जिनका उच्चारण-स्थान एक ही हो।

उदाहरण—"सलिल सों नित सींचति आस कै,
सतत राखत जो तन बेलि है।"

(ई) अन्त्यानुप्रास : लक्षण—जहाँ चरणों के अंतिम अक्षर की एक-सी तुक मिले वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है।

उदाहरण—"जो सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि रासि सुभगुन सदन॥"

(उ) लाटानुप्रास : लक्षण—जहाँ एक या अनेक समानार्थक शब्दों की समता होते हुए भी तात्पर्य भिन्न हो।

उदाहरण—"सूर वही जिन बांचिये, तुलसी केशव सूर।
सूर वही जिन बांचिये, तुलसी केशव सूर॥"

२. यमक :—

लक्षण—'वहै शब्द पुनि-पुनि परै, अर्थ और ही और।' अर्थात् जिस स्थान पर एक शब्द बार-बार आवे, परन्तु उसके अर्थ अलग-अलग हों।

उदाहरण—"कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।"

३. श्लेष :—

लक्षण—"श्लेष अलंकृत अर्थ बहु एक शब्द में होय।" अर्थात् जिस स्थान पर शब्द एक ही हो, परन्तु उसके कई अर्थ निकलते हों, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।

इसके दो भेद हैं—(१) अभंग श्लेष (२) सभंग श्लेष।

(अ) अभंग श्लेष : लक्षण—शब्द को बिना तोड़े कई अर्थ निकलते हों।

उदाहरण—"मंगन को देख पट देत बार-बार हैं।"

(आ) सभंग श्लेष : लक्षण—जब शब्दों को तोड़कर कई अर्थ निकाले जा सकते हों, तब 'सभंग श्लेष' होता है।

उदाहरण—"चिर जीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर।"

४. वक्रोक्ति :—

लक्षण—"हों श्लेष औ' काकु ते कल्पित औरै अर्थ।" जहां अर्थ की विभिन्नता से या कंठ की विशेषता से कहने वाले का अभिप्राय सुनने वाला कुछ और लगा ले, वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है। इसके दो भेद हैं—(१) काकु वक्रोक्ति, (२) श्लेष वक्रोक्ति।

(अ) काकु वक्रोक्ति : लक्षण—जहाँ कंठ की विशेषता के कारण कहने वाले के अर्थ को भोक्ता इसी प्रकार समझे।

उदाहरण—"हौं सुकुमारि नाथ वन जोगू।
तुम्हिं उचित तप मो कहँ भोगू॥"

(आ) श्लेष वक्रोक्ति : लक्षण—जहाँ शब्दों के श्लिष्ट होने से कहने वाले का अभिप्राय सुनने वाले दूसरी प्रकार समझें।

उदाहरण—"कहां भिखारी गयो यहां ते, करै जु तुव प्रतिपालो।
होयगो कहीं जाय किन देखो, बलि पै पर्यो कसालो॥"

५. पुनरुक्तिप्रकाश :—

लक्षण—जहां एक शब्द का प्रयोग किसी शब्द पर बल देने के लिए या घृणा, आश्चर्य आदि भाव प्रकट करने के लिए वार-वार किया जाय।

उदाहरण—"अस लागी अस लागी अस लागी अस लागी,
अस लागी अस लागी अस प्रीत सही री।"

६. पुनरुक्तवदाभास :—

लक्षण—"जान परै पुनरुक्ति सी पै पुनरुक्ति न होय।" अर्थात् जहाँ शब्दों का प्रयोग देखने में ऐसा लगता हो जैसे कि ये एक-से अार्थ वाले हैं, परन्तु वास्तव में उनके अर्थ भिन्न हों, वहाँ 'पुनरुक्त-वदाभास' अलंकार होता है।

उदाहरण—अली, भौंर गूंजन लगे,
होन लगे दल पात

अर्थालंकार

१. उपमा :—

लक्षण—"रूप-रंग गुन काहु को काहू के अनुसार।
ताको उपमा कहत हैं जे सुबुद्धि आगार॥"

जहाँ किसी वस्तु की तुलना किसी प्रसिद्ध वस्तु से की जाये, वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमा अलंकार के चार अंग हैं—उपमेय उपमान, वाचक और साधारण धर्म।

(अ) **उपमेय**—जिसकी उपमा दी जाय।

(आ) **उपमान**—जिससे उपमा दी जाय।

(इ) **वाचक**—समतासूचक शब्द।

(ई) **साधारण धर्म**—उपमेय और उपमान की समता का फल।

उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्य में उपमा के चारों अंग हैं—

"नील गगन सा शान्त हृदय था हो रहा।"

यहाँ 'हृदय' उपमेय है, 'नील गगन' उपमान, 'सा' वाचक शब्द और 'शान्त' साधारण धर्म है।

उपमा के भेद :—

(अ) **पूर्णोपमा : लक्षण**—जहाँ उपमा के चारों अंग हों।

उदाहरण—"नील गगन सा शान्त हृदय था हो रहा।"

(आ) **लुप्तोपमा : लक्षण**—जहाँ उपमा के चारों अंगों में से कोई अंग लुप्त हो।

उदाहरण—"केश सर्प के समान हैं।"

(इ) **धर्मलुप्ता : लक्षण**—जहाँ साधारण धर्म लुप्त हो।

उदाहरण—"मुख चन्द्रमा के समान है।"

(ई) **वाचकधर्मलुप्ता : लक्षण**—जहाँ वाचक और साधारण धर्म, दोनों लुप्त हों।

उदाहरण—"मुख-चन्द्र"

(उ) **मालोपमा : लक्षण**—जहाँ एक उपमेय की अनेक उपमानों से समता दिखलाई जाय।

उदाहरण—"देख री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर इक सैन।"

(ऊ) **रसनोपमा : लक्षण**—जहाँ पहला उपमेय दूसरे वाक्य का उपमान बनता चला जाये।

उदाहरण—"कुल सों मति, मति सों मन, मन सों गुरुदान।"

(ए) **उपमेयोपमा : लक्षण**—जहाँ उपमेय की उपमान के साथ और उपमान की उपमेय के साथ तुलना हो।

उदाहरण—"वचन सुधा से सन्त के, सुधा वचन सम जान।"

(ऐ) **अनन्वयोपमा : लक्षण**—जहाँ उपमेय की तुलना उपमेय से की जाये।

उदाहरण—"आज गरीबनिवाज मही पर, तो सो तु ही सिवराज विराजै।"

(ओ) **असम : लक्षण**— उपमेय के समक्ष जहाँ कोई उपमान लगे ही नहीं।

उदाहरण—शिवाजी के समान संसार में कोई नहीं।

(औ) **वाक्यार्थोपमा : लक्षण**—जहाँ किसी एक वाक्य की समता बतलाते हुए कोई दूसरा वाक्य कहा जाय।

उदाहरण—"बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के वचन संत सहैं जैसे॥"

२. रूपक :—

लक्षण—'उपमेय अरु उपमान भव एकै रूप लखाय'। अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान का अभेद हो। रूपक के तीन भेद हैं—सांग, निरंग, परम्परित।

(अ) **सांग रूपक : लक्षण**—जहाँ उपमेय पर अंग-सहित उपमान का आरोप हो।

उदाहरण—"उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब विहँसे लोचन भृंग॥"

(आ) **निरंग रूपक : लक्षण**—जहाँ उपमान के अंगों का वर्णन न हो, पर उपमेय पर आरोप हो।

उदाहरण—"बन्दौं गुरु पद-कंज।"

(इ) **परम्परित रूपक : लक्षण**—जहाँ मुख्य आरोप का कोई दूसरा कारण हो।

उदाहरण—"तुम बिन रघुकुल-कुमुद-विधु, सुरपुर नरक समान।"

३. उत्प्रेक्षा :—

लक्षण—'जहँ कीजै संभावना सो उत्प्रेक्षा जान।' जिस स्थान पर उपमेय की उपमान रूप में कवि-प्रौढोक्ति द्वारा संभावना की जाय। जैसे—"मुख मानो चन्द्रमा है।" उत्प्रेक्षा के पाँच भेद होते हैं—

(अ) **वस्तूत्प्रेक्षा : लक्षण**—जिस स्थान पर एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में संभावना की जाय।

उदाहरण—"फटिकसिला के वर विसाल मम विस्मय बोहत ।
मनहु विसद छत्र अनाधार अंबर में सोहत ॥"

(आ) हेतूत्प्रेक्षा : लक्षण—जहाँ अहेतु में हेतु को मान लिया जाय ।

उदाहरण—"मोर मुकुट की चन्द्रिकनि यों राजत नंदनंद ।
मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सत चंद ॥"

(इ) फलोत्प्रेक्षा : लक्षण—जहाँ अफल में फल की संभावना की जाय ।

उदाहरण—"बढ़त ताड़ को वृक्ष यह मनु चूमन आकास ।"

(ई) प्रतीयमान उत्प्रेक्षा : लक्षण—जहाँ विना वाचक शब्द के उपमेय से उपमान की संभावना व्यक्त हो ।

उदाहरण—"नित्य ही नहाता क्षीर सिन्धु में कलाधर है ।
सुन्दर तव आनन की समता की इच्छा से ॥"

(उ) सापह्नवोत्प्रेक्षा : लक्षण—जहाँ उत्प्रेक्षा के साथ अपह्नुति भी व्यक्त हो ।

उदाहरण—"विकलता उनकी अवलोक के रजनि भी करती अनुताप थी ।"

४. अपह्नुति :—

लक्षण—'आन बात आरोपिये सांची बात छिपाय' अर्थात् जिस स्थान पर उपमेय का निषेध

करके अन्य का स्थापन किया जाय, वहाँ पर 'अपह्नुति' अलंकार होता है। जैसे—"मुख नहीं, चन्द्रमा है।" यह अलंकार सात प्रकार का होता है।

(अ) शुद्धापह्नुति : लक्षण—जिस स्थान पर उपमेय को छिपाकर उपमान का आरोप करने में निषेधात्मक शब्द भी कहे जाएँ।

उदाहरण—"**पहिरे स्याम न पीत पट, घन में बिज्जु बिलास।**"

(आ) कैतवापह्नुति : लक्षण—जहाँ मिस, ब्याज, छल आदि शब्दों द्वारा उपमेय का निषेध किया जाय।

उदाहरण—"**लखी नरेस बात सब सांची।**
तिय मिस मीचु सीस पर नाची।।"

(इ) हेत्वापह्नुति : लक्षण—उपमेय का निषेध करने में उसका कारण भी दिया जाय।

उदाहरण—"**है न सुधा यह, है सुधा संगति साधु समाज।**"

(ई) भ्रान्तापह्नुति : लक्षण—जहाँ किसी की शंका को दूर करने लिए उपमेय के सत्य को बतलाया जाय।

उदाहरण—'**बेटा भीत न होना, वह था तेरा ही प्रतिबिम्ब जगा।**'

(उ) पर्यस्तापह्नुति : लक्षण—एक वस्तु के धर्म का निषेध करके किसी दूसरी वस्तु में उसका होना बतलाया जाय।

उदाहरण—"**धनी नहीं धनवान हैं, संतोषी धनवान।**"

(ऊ) छेकापह्नुति : लक्षण—जिस स्थान पर अपने रहस्य के खुल जाने पर मिथ्या समाधान द्वारा उसे छिपाने का कथन किया जाय।

उदाहरण—"जब मोरे मन्दिर में आवै, सोती मुझको आन जगावै।
पढ़न लगे वह बिरह के अच्छर,
ऐ सखि साजन ! ना सखि मच्छर !"

(ए) विशेषापह्नुति : लक्षण—जिस स्थान पर विशेष प्रकार से उपमेय का निषेध किया जाय।

उदाहरण—"वे मुस्काते फूल नहीं, जिनको आता है मुरझाना।"

५. अतिशयोक्ति :—

लक्षण—जहाँ किसी वस्तु का वर्णन इतना बढ़ा-चढ़ाकर किया जाय कि लोक-सीमा का भी अतिक्रमण हो जाय, वहाँ 'अतिशयोक्ति' अलंकार होता है।

उदाहरण—"सात समुन्द की मसि करूँ, लेखनि सब बनराय।
सब धरती कागद करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय॥"

यहाँ गुरु के गुणों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है।

अतिशयोक्ति के ७ भेद होते हैं—

(अ) भेदकातिशयोक्ति : लक्षण—जहाँ पर उपमेय में भेद न होने पर भी भेद का कथन कर दिया जाय, वहाँ 'भेदकातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"वह चितवन औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान।"

(आ) रूपकातिशयोक्ति : लक्षण—जहाँ उपमेय का वर्णन न होकर उपमान का ही वर्णन हो, वहाँ 'रूपकातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"कनक कदलि पर सिंह सयारल, तापर मेरु समानें।"

(इ) सम्बन्धातिशयोक्ति : लक्षण—जहाँ सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध का वर्णन किया जाय, वहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"सूर तुरंगन के उरझे पग।"

(ई) अक्रमातिशयोक्ति : लक्षण—जहाँ पर कार्य और कारण के एक ही समय में होने का वर्णन किया जाय, वहाँ 'अक्रमातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"वह शर इधर गाण्डीव गुण से भिन्न जैसे ही हुआ।
धड़ से जयद्रथ का उधर शिर छिन्न वैसे ही हुआ॥"

(उ) चपलातिशयोक्ति : लक्षण—जैसे ही कारण का ज्ञान हो वैसे ही ज्ञान-मात्र से कार्य हो जाय, वहाँ 'चपलातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"कैकेयी के कहत ही राम गमन की बात।
नृप दशरथ के ताहि छिन, सूख गये सब गात॥"

(ऊ) **असम्बन्धातिशयोक्ति : लक्षण**—जहाँ सम्बन्ध में असम्बन्ध का वर्णन हो, वहाँ 'असम्बन्धातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"तो कर आगे कल्पतरु क्यों पावै सम्मान।"

(ए) **अत्यन्तातिशयोक्ति : लक्षण**--जहाँ कारण होने से पूर्व ही कार्य की उत्पत्ति का कथन हो, वहाँ 'अत्यन्तातिशयोक्ति' होती है।

उदाहरण—"हनुमान की पूंछ में लगन न पाई आग।
लंका सारी जर गई गये निसाचर भाग॥"

६. प्रतीप :—

लक्षण—"सो प्रतीप उपमेय को कीजे जो उपमान।" **जिस स्थान पर उपमेय को उपमान बना** कर वर्णन किया जाय, वहाँ 'प्रतीप' अलंकार होता है।

उदाहरण—"**मुख के सदृश चन्द्र शोभित है, कमल नेत्र सम लगते हैं।**"

७. अनन्वय :—

लक्षण—जिस स्थान पर उपमेय का ही उपमान के रूप में वर्णन किया जाय, वहाँ 'अनन्वय' अलंकार होता है।

उदाहरण—"सागर है सागर सदृस गगन गगन सम जान।
है रन रावन राम को रावन राम समान॥"

८. स्मरण :—

लक्षण—"कछु लख, कछु गुन, देख कछु, सुधि आवै कछु खास।" जहाँ किसी वस्तु को देखकर पूर्व स्मृति जाग्रत हो जाय, वहाँ 'स्मरण' अलंकार होता है।

उदाहरण—"सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, उहि जमुना के तीर॥"

९. संदेह :—

लक्षण—जहाँ समता के कारण ज्ञान का निश्चय न हो सके कि यह अमुक वस्तु है या अमुक, वहाँ 'संदेह' अलंकार होता है।

उदाहरण—"सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।
कि नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है॥"

१०. भ्रान्तिमान् :—

लक्षण—जहाँ दो वस्तुओं में समता के कारण मिथ्या ज्ञान का निश्चय हो जाय, वहाँ 'भ्रान्तिमान्' या 'भ्रम' अलंकार होता है।

उदाहरण—"बिल विचार प्रविसन लग्यो, व्याल सुंड में व्याल।"

११. व्यतिरेक :—

लक्षण—जहाँ उपमेय को उपमान से बढ़कर बताया जाय, वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है।

उदाहरण—"संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहत न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर सुख द्रवै सुसंत पुनीता॥"

१२. विनोक्ति :—

लक्षण—जहाँ उपमेय को अन्य किसी वस्तु के अभाव में अशोभनीय बतलाया जाय, वहाँ 'विनोक्ति' अलंकार होता है।

उदाहरण—"गृह सूनो विन पुत्र, पत्र विन तरुवर सूनो।
विप्र सून विन वेद, ललित विन शायर सूने॥"

१३. व्याज स्तुति :—

लक्षण—जहाँ किसी वस्तु की निन्दा से स्तुति की प्रतीति हो और ऐसे ही स्तुति से निन्दा होती हो, वहाँ 'व्याज स्तुति' अलंकार होता है।

उदाहरण—"वाल समें दधि दूध चुराय, वढ़े पुनि गोपी के चीर चुराये।
राधिका जी को हियो हु चुराय, निकुंज निकुंजन माँहि दुराये॥"

अन्य उदाहरण—(स्तुति से निन्दा)—

"है घूमता फिरता समय, तुम किन्तु ज्यों के त्यों खड़े ।
फिर भी अभी तक जी रहे हो, वीर हो निश्चय बड़े ।।"

१४. यथासंख्य :—

लक्षण—जिस स्थान पर जिस क्रम से पहले वस्तुओं का वर्णन हो उसी क्रम से उनके गुण आदि का उल्लेख किया गया हो, वहाँ 'यथासंख्य' अलंकार होता है । इसे 'क्रम' अलंकार भी कहते हैं ।

उदाहरण—"शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हें बरिआई ।
त्यागन गहन उपेक्षणीय अरि हाटक तृन की नाईं ।।"

१५. काव्यलिङ्ग :—

लक्षण—जहाँ किसी समर्थन करने योग्य बात को कहकर उसका समर्थन भी कर दिया जाय, वहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलंकार होता है ।

उदाहरण—"श्री पुर में बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति ।
री मुंदरी ! अब तियन की, को करिहै परतीति ।।"

१६. उदाहरण :—

लक्षण—जहाँ पहले सामान्य रूप से किसी बात का कथन कर दिया जाय, फिर उसे समझाने के लिए कोई उदाहरण दे दिया जाए, वहाँ 'उदाहरण' अलंकार होता है।

उदाहरण—'गुन के गाहक सहस नर बिन गुन लहै न कोद,
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय।
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन,
दोऊन को एक रंग काग सब भये अपावन ॥"

१७. अर्थान्तरन्यास :—

लक्षण—जिस स्थान पर किसी सामान्य बात को कहकर उसका समर्थन किसी विशेष बात से किया जाय या विशेष को कहकर उसका समर्थन सामान्य बात से हो, वहाँ 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार होता है।

उदाहरण—'सरवर नीर न पीवहीं, स्वाति बूँद की आस।
केहरि कबहुँ न तृन चरै, जो व्रत करै पचास ॥"

१८. विरोध :—

लक्षण—जहाँ विरोध न होने पर भी कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया हो कि विरोध-सा

लगता हो, वहाँ 'विरोध' अलंकार होता है। इसे 'विरोधाभास' भी कहते हैं—

उदाहरण—"तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रङ्ग।
अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अङ्ग॥"

१९. विभावना :—

लक्षण—जहाँ बिना हेतु के भी कार्य की उत्पत्ति हो, वहाँ 'विभावना' अलंकार होता है।

उदाहरण—"बिन पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिन बाणी वक्ता बड़ जोगी॥"

२०. विशेषोक्ति :—

लक्षण—जहाँ कारण के विद्यमान होते हुए भी कार्य का न होना वर्णित हो, वहाँ 'विशेषोक्ति' अलंकार होता है।

उदाहरण—"देखो दो-दो मेघ बरसते, मैं प्यासी की प्यासी।"

२१. अन्योन्य :—

लक्षण—दो वस्तुओं का जहाँ ऐसा सम्बन्ध दिखलाया जाय कि एक से दूसरे का उपकार होता हो, वहाँ 'अन्योन्य' अलंकार होता है।

उदाहरण—"पतनी पति बिनु दीन अति, पति पतनी बिनु दीन।
चंद विना ज्यों जामिनी, ज्यों जामिनि बिनु चंद॥"

२२. सार :—

लक्षण—जिस स्थान पर पूर्व वर्णित वस्तु का उत्तरोत्तर वर्णित वस्तुओं में उत्कर्ष या अपकर्ष दिखलाया जाये, वहाँ 'सार' अलंकार होता है।

उदाहरण—"विश्व में समस्त आज भारत का गौरव है,
भारत के मध्य नाम दिल्ली उजियारा है।
दिल्ली के मध्य बीसों बस्तियां विराजती हैं,
राना प्रतापबाग नाम किन्तु न्यारा है॥"

२३. एकावली :—

लक्षण—जहाँ वस्तुओं का वर्णन करते हुए आगे आने वाली वस्तु अपने से पहले वर्णित वस्तु का विशेषण बनकर आती है, वहाँ 'एकावली' अलंकार होता है।

उदाहरण—"मानुष वह जो हो गुनी, गुनी जो कोविद रूप।"

२४. हेतु :—

लक्षण—जिस स्थान पर कारण और कार्य का होना एक साथ वर्णित हो, वहाँ 'हेतु' अलंकार होता है।

उदाहरण—"मरु मग लौं तेरो अधर, विद्रुम-छाय लखाय।
कहु अलि ! मन किहिं को न यह, प्यास विकल करवाय।।"

२५. स्वभावोक्ति :—

लक्षण—जिस स्थान पर बालकों की स्वाभाविक चेष्टाएँ या प्रकृति की सुन्दर छटा का चमत्कार-पूर्ण वर्णन हो, वहाँ 'स्वभावोक्ति' अलंकार होता है।

उदाहरण—"काटे हाथ छुरी से चुनमुन, दूध-दूध रटती दुनिया।
कभी फिसलकर गिरता चुनमुन, जलती बत्ती से छुनिया।।"

२६. असंगति :—

लक्षण—कारण से जिस स्थान पर कार्य होना चाहिए वहाँ न हो अर्थात् कारण और कार्य की स्थिति अलग-अलग हो, वहाँ 'असंगति' अलंकार होता है।

उदाहरण—"दृग उरझत टूटत कुटुम्ब, जुरत चतुर चित प्रीत।
परत गांठ दुरजन हिये, दई नई यह रीत।।"

उभयालंकार

१. संसृष्टि :—

लक्षण—जिस स्थान पर कई अलंकार एक साथ मिले हुए हों, पर अलग-अलग देखे भी जा सकें; जैसे कि तिल और तण्डुल मिलने पर देखे जा सकते हैं, वहाँ 'संसृष्टि' अलंकार होता है।

उदाहरण—"औरन के तेज तुल जात हैं तुलान बिच,
तेरो तेज जमुना तुलान न तुलाइये।"
[इसमें अनुप्रास और यमक की संसृष्टि है।]

२. संकर :—

लक्षण—जहाँ कई अलंकार अत्यन्त मिले हुए हों; जैसे कि नीर और क्षीर मिलकर एक हो जाते हैं, वहाँ 'संकर' अलंकार होता है। इसके तीन भेद होते हैं—

(अ) अंगांगीभाव-संकर : लक्षण—जहाँ एक-दूसरे पर आश्रित कई अलंकार एक जगह मिले रहते हैं, वहाँ 'अंगांगीभाव-संकर' होता है।

उदाहरण—'हो जाते हिम के पहाड़ सम वे सौन्दर्यशाली महा।
आता है महिमा विलोकन अहो! मानो हिमाद्री वहाँ॥"
[यहाँ उत्प्रेक्षा और उपमा अन्योन्याश्रित हैं।]

(आ) सन्देह-संकर : लक्षण—जहाँ बहुत से अलंकारों का मेल इस तरह से हो कि किसी एक अलंकार का निर्णय न हो सके, वहाँ 'सन्देह-संकर' होता है।

उदाहरण—"काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली॥"

[यहाँ उपमा और रूपक की स्थिति का सन्देह है।]

(इ) एकवाचकानुप्रवेश-संकर : लक्षण—जहाँ एक ही आश्रय में एक से अधिक अलंकार विद्यमान हों, वहाँ 'एकवाचकानुप्रवेश-संकर' होता है।

उदाहरण—"लगि लगि ललित लतान सों, करि करि मधुप मदंध।
आवत दच्छिन ओर तें, मारुत मधुप-मदंध॥"

[यहाँ पर 'मारुत मधुप मदंध' पद में अनुप्रास अलंकार है और 'मारुत' को 'मधुप' कहने से रूपक भी इसी में है। अतः यहाँ एकवाचकानुप्रवेश-संकर है।]

अलंकार-भेद-निरूपण

१. उपमा और रूपक :—

उपमा अलंकार में उपमेय की उपमान से समता का कथन किया जाता है, परन्तु रूपक में उपमेय और उपमान का रूप एक ही होता है। 'मुख चन्द्रमा के समान है', इस वाक्य में उपमा अलंकार है। 'मुख चन्द्र है', इसमें रूपक अलंकार है। यही इन दोनों का भेद है।

२. उपमा और उत्प्रेक्षा :—

उपमा अलंकार में उपमेय की समता का उपमान वर्णित किया जाता है, परन्तु उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। 'मुख चन्द्रमा के समान है', इसमें उपमा है और 'मुख मानो चन्द्रमा है', इसमें उत्प्रेक्षा है, क्योंकि मुख (उपमेय) में चन्द्रमा (उपमान) की संभावना की गई है।

३. संदेह और भ्रान्तिमान् :—

संदेह अलंकार में प्रस्तुत वस्तु और अप्रस्तुत के होने में संदेह बना रहता है। 'यह रस्सी है या साँप है', ऐसा संदेह बना रहने पर 'संदेह' अलंकार होता है, परन्तु रस्सी को भ्रमवश साँप ही समझ लिया जाय तो 'भ्रान्तिमान्' अलंकार होता है। **'बिल विचार प्रविसन लग्यो ब्याल सुंड में ब्याल'** इसमें सर्प को यह भ्रम हो गया कि हाथी की सूँड बिल है, अतः भ्रान्तिमान् है। यहीं पर अगर वह यह सोचता कि यह बिल है या नहीं है और उसका संदेह बना रहता तो संदेह अलंकार हो सकता था।

४. यमक और श्लेष :—

जिस स्थान पर कोई शब्द बार-बार आये और उसका बार-बार अर्थ भी बदलता रहे तो 'यमक' अलंकार होता है, परन्तु यदि शब्द एक ही बार आये और अर्थ कई हों तो 'श्लेष' अलंकार होता है। **'सारंग ने सारंग गह्यो सारंग बोल्यो आय'**, इसमें सारंग का अर्थ क्रमशः मोर, साँप और बादाम है; अतः 'यमक' अलंकार है, परन्तु **'मंगन को देख पट देत बार-बार हैं'** में 'पट' का अर्थ वस्त्र और किवाड़ दोनों प्रकार का है, अतः यहाँ 'श्लेष' अलंकार है।

५. पुनरुक्तिप्रकाश और पुनरुक्तवदाभास :—

'पुनरुक्तिप्रकाश' में एक शब्द प्रभावोत्पादन के लिए कई बार प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु 'पुनरुक्तवदाभास' में शब्द इस प्रकार के होते हैं जिनका अर्थ एक-जैसा भी लग सकता है, पर वहाँ दूसरा अर्थ ही लेना उपयुक्त होता है। जैसे-**'अली भौंर गूंजन लगे'** में 'अली' भी भौंरे को कहते हैं और 'भौंरा' शब्द आगे आया है तो पुनरुक्ति-सी लगी, परन्तु 'अली' का अर्थ यहाँ पर सखी से है। अतः पुनरुक्ति का आभास-सा लगता है; वास्तव में पुनरुक्ति नहीं हुई। **'खेदि खेदि खाती'** में खेदि की पुनरावृत्ति का दूसरा अर्थ नहीं है, अतः यहाँ पुनरुक्तिप्रकाश है।

६. प्रतीप और व्यतिरेक :—

प्रतीप अलंकार में उपमेय को उपमान बना दिया जाता है, परन्तु व्यतिरेक में उपमान से उपमेय

को बढ़ाकर बतलाया जाता है । 'मुख के समान कमल शोभायमान है', इस वाक्य में मुख उपमेय को उपमान बना दिया गया है । परन्तु 'मुख कमलों से अधिक सुन्दर है', इस वाक्य में मुख की सुन्दरता को (उपमेय को) कमल (उपमान) की सुन्दरता से बढ़ाकर वर्णित किया है, अतः यहाँ पर 'व्यतिरेक' अलंकार है । "**सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक**" में व्यतिरेक अलंकार है ।

७. काव्यलिङ्ग और अर्थान्तरन्यास :—

काव्यलिङ्ग में एक समर्थनीय बात कहकर उसका समर्थन किया जाता है, उसमें कोई सामान्य या विशेष नहीं होता; परन्तु अर्थान्तरन्यास में सामान्य का विशेष बात से और विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है ।

हिन्दी मुहावरा चार्ट

मुहावरा क्या है ?

प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द-समूह या वाक्यांश होते हैं जिनका प्रचलित अर्थ शाब्दिक अर्थ से भिन्न होता है। ऐसे शब्द-समूह या वाक्यांश मुहावरे कहलाते हैं। ये वाक्यांश बहुत बड़ी बात को थोड़े में कह देते हैं, हृदय पर गहरा प्रभाव डालते हैं तथा भाषा को रोचक बनाते हैं। नीचे कुछ ऐसे ही वाक्यांश या मुहावरे दिए जा रहे हैं जिनका प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में प्रायः करते रहते हैं।

१. अँगुली पर नचाना—वश में रखना—स्त्रियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति अपने पति को अंगुली पर नचाने की होती है।

२. अँधेरे घर का उजाला—इकलौता बेटा—हरीश जज साहब की एक मात्र संतान है, वही उनके अंधेरे घर का उजाला है।

३. अंकुश देना—वश में रखना—यदि माता-पिता बच्चों पर अंकुश न रखें तो उनके बिगड़ने की संभावना अधिक रहती है।

४. अंग अंग ढीला होना—थक जाना—सारा दिन काम करने से अंग अंग ढीला हो जाता है।

५. अंगार उगलना—क्रोध में कठोर वचन कहना—जब मोहन ने सोहन को युद्ध के लिये तैयार देखा तभी अंगार उगलने लगा।

६. अंगारे बरसना—कड़ाके की गर्मी पड़ना—देहली की जलवायु काफ़ी गर्म है, मई-जून में तो यहाँ अंगारे बरसते हैं।

७. अंगूठा दिखाना—इनकार कर देना—सच्चे मित्र की पहचान तो संकट पड़ने पर होती है। दुष्ट मित्र ऐसे समय अंगूठा दिखा देते हैं, किन्तु सच्चे मित्र हर सम्भव उपाय से सहायता करते हैं।

८. अंडे सेना—चुपचाप आलस्य में बैठे रहना—बैठे-बैठे अण्डे सेने से कुछ नहीं होता, उद्यम करने से ही सफलता प्राप्त होती है।

९. अन्धे की लकड़ी—एक मात्र सहारा—महेश अपने माँ-बाप का इकलौता लड़का है, उनके लिये तो वह अन्धे की लकड़ी के समान है।

१०. अक्ल का दुश्मन—मूर्ख व्यक्ति—राम तो अक्ल का दुश्मन है, वह एक बार में कोई बात समझता ही नहीं।

११. अक्ल चकराना—समझ में न आना—वेदों का अर्थ करने में पंडितों की अक्ल चकरा जाती है।

१२. अक्ल पर पत्थर पड़ना—बुद्धि नष्ट हो जाना—वृद्धावस्था आने पर मनुष्य की अक्ल पर पत्थर पड़ जाते हैं।

१३. अगर-मगर करना—टाल-मटोल करना—ऋणी व्यक्ति रुपया वापिस करते समय अगर-मगर करते हैं।

१४. अठखेलियाँ सूझना—दिल्लगी करना—यहाँ तो मुसीबत में पड़े हैं और तुम्हें अठखेलियाँ सूझ रही हैं। भाई, दिल्लगी छोड़ो और मेरी समस्या सुलझाने का प्रयत्न करो।

१५. अपना उल्लू सीधा करना—स्वार्थ सिद्ध करना—अधिकांश राजनीतिज्ञ अपना उल्लू सीधा करने में ही लगे रहते हैं।

१६. अपनी खिचड़ी अलग पकाना—अलग रहना—हिटलर सदैव अपनी खिचड़ी अलग पकाता था।

१७. **आँख आना**—आँख में बीमारी होना—गर्मी के मौसम में बहुधा बच्चों की आँखें आ जाती हैं। अतः उन्हें धूप से बचाना चाहिए।

१८. **आँख का काँटा**—असह्य होना—काश्मीर पर पाकिस्तान का शासन प्रत्येक भारतीय के लिए आँख का काँटा बना हुआ है।

१९. **आँख दिखाना**—डाँटना-धमकाना—माता-पिता को कभी-कभी बच्चों को आँख भी दिखानी पड़ती है।

२०. **आँखें खुलना**—सावधान होना—ठोकर खाकर ही मनुष्य की आँखें खुलती हैं।

२१. **आँखें फेर लेना**—बे मुहब्बत हो जाना—अधिकांश व्यक्ति काम निकाल कर आँखें फेर लेते हैं।

२२. **आँखें सेंकना**—सुन्दर वस्तु देख कर तृप्त होना—कामी पुरुष सुन्दर लड़की को देख कर आँखें सेंका करते हैं।

२३. **आँखें बिछाना**—प्रेम-सहित आदर करना—गोपियाँ कृष्ण के लिए सदा आँखें बिछाए रहती थीं।

२४. **आँखों में खटकना**—बुरा लगना—भारतवर्ष की उन्नति चीन की आँखों में खटकती रहती है।

२५. **आँखों में धूल झोंकना**—धोखा देना—माता-पिता और अध्यापकों की आँखों में धूल झोंकने से क्या लाभ? विद्यार्थियों को चाहिए कि डट कर परिश्रम करें।

२६. **आँखों में रात काटना**—सारी रात जागते रहना—परिणाम निकलने से पहले बड़ी बेचैनी रहती है, कभी-कभी तो सारी रात आँखों में ही कट जाती है।

२७. **आकाश टूट पड़ना**—आकस्मिक विपत्तियों का आ जाना—भारत का बँटवारा होने से पश्चिमी पंजाब के हिन्दुओं पर तो आकाश ही टूट पड़ा था।

२८. **आटे दाल का भाव मालूम होना**—सांसारिक कष्टों का अनुभव होना—जो लोग विद्यार्थी-जीवन में परिश्रम नहीं करते, उन्हें बाद में आटे दाल का भाव मालूम पड़ता है।

२९. **आवाज उठाना**—विरोध प्रकट करना—महात्मा गांधी ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आवाज़ उठा कर भारतवर्ष को स्वतन्त्र करके ही छोड़ा।

३०. **आंखों से गिरना**—आदर कम हो जाना—कुकर्म करने से मनुष्य समाज की आंखों से गिर जाता है।

३१. **आंसू पीकर रह जाना**—निरुपाय होकर चुपचाप दुःख सह लेना—राम के वन जाने पर कौशल्या आंसू पी कर रह गई।

३२. **आंखों में खून उतर आना**—क्रोध से आंखें लाल होना—शिव के धनुष को टूटा हुआ देख कर परशुराम की आंखों में खून उतर आया।

३३. **आंख मिलाना**—सामना करना—जिस व्यक्ति ने पहली बार कोई बुरा काम किया हो उसमें किसी से आंख मिलाने का भी साहस नहीं रहता।

३४. **आसमान के तारे तोड़ना**—असम्भव काम कर दिखाना—आजकल अच्छी नौकरी प्राप्त कर लेना भी आसमान के तारे तोड़ने के समान हो गया है।

३५. **आस्तीन का सांप होना**—विश्वासघाती होना—दुर्जन को कभी मित्र न बनाओ ; वह कभी भी आस्तीन का सांप बन सकता है।

३६. **इधर-उधर की हाँकना**—बेकार की बातें करना—परीक्षा में विद्यार्थियों को इधर-उधर की न हाँक कर संक्षेप में ठीक-ठीक उत्तर देने चाहिएँ।

३७. **ईंट से ईंट बजाना**—नष्ट-भ्रष्ट कर देना—दूसरे महायुद्ध में अमेरिका और ब्रिटेन ने मिल कर कई राष्ट्रों की ईंट से ईंट बजा दी।

३८. **ईद का चाँद** बहुत कम दिखाई देना—जब से राजीव का विवाह हुआ है तब से वह ईद का चाँद बन गया है। अब तो वह मिलने भी नहीं आता।

३९. **उगल देना**—भेद प्रकट कर देना—शराब पीकर मनुष्य कहनी-अनकहनी सब उगल देता है।

४०. **उतार-चढ़ाव देखना**—अनुभवी होना—बड़े-बूढ़ों की सलाह मानने से लाभ ही रहता है, क्योंकि उन्होंने बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव देखे होते हैं।

४१. **उधेड़-बुन में पड़ना**—सोच में पड़ना—विपत्ति में मनुष्य उधेड़-बुन में पड़ जाता है।

४२ **उन्नीस-बीस होना**—बहुत कम अन्तर—एक साथ उत्पन्न भाइयों की शक्ल उन्नीस-बीस होती है।

४३. **उल्टी गंगा बहाना**—उल्टा काम करना—हम विदेशों से कला व दस्तकारी का सामान मंगवा कर उल्टी गंगा क्यों बहायें ? कला तो भारतवर्ष में बिखरी पड़ी है।

४४. **उल्लू बनाना**—बेवकूफ़ बनाना—अंग्रेजों ने भारतीयों को बहुत दिनों तक उल्लू बनाया, किन्तु अन्त में उन्हें भागना ही पड़ा।

४५. **एक अनार सौ बीमार**—आवश्यकता से अधिक माँग आजकल बाजार में चीनी के लिए एक अनार सौ बीमार वाली बात हो रही है।

४६. **एक के तीन बनाना**—अनुचित लाभ उठाना—लोहे की कमी पड़ जाने के कारण व्यापारी एक के तीन बनाने में लगे हुए हैं।

४७. **एक ढेले से दो शिकार करना**—एक चेष्टा से दो उद्देश्यों की पूर्ति करना—वकीलों की नीति एक ढेले से दो शिकार करने की रहती है।

४८. **एक लकड़ी से हांकना**—सभी को एक ही दृष्टि से देखना—आजकल के समाजवादी सभी को एक लकड़ी से हाँकना चाहते हैं।

४९. **एड़ी चोटी का पसीना एक करना**—कठिन परिश्रम करना—कृपक अधिक अन्न उत्पन्न करने के लिए एड़ी चोटी का पसीना एक कर देते हैं।

५०. **ऐंठ निकालना**—गर्व दूर करना—सात महीने की कैद ने उसकी सारी ऐंठ निकाल दी।

५१. **कच्ची गोलियाँ खेलना**—अनुभव की कमी—शिवाजी ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं; वे औरंगजेब के दावों को अच्छी प्रकार जानते थे।

५२. **कदम चूमना**—चापलूसी करना—नौकरी प्राप्त करने के लिए कभी कभी अफ़सरों के कदम भी चूमने पड़ते हैं।

५३. **कमर सीधी करना**—थकान मिटाना—इन दिनों उसके पास इतना काम रहता है कि कमर सीधी करने के लिए भी समय नहीं मिल पाता।

५४. **कलम तोड़ना**—बहुत अच्छा लिखना—प्रसाद जी ने 'कामायनी' लिखने में कलम तोड़ दी।

५५. **कलेजा ठंडा होना**—सन्तोष होना—राम के वनवास से कैकेयी का कलेजा ठंडा हो गया।

५६. **कलेजा थाम कर रह जाना**—कठिनता से धैर्य धारण करना—गांधी जी की मृत्यु पर संसार के सभी देश कलेजा थाम कर रह गये।

५७. **कलेजा दो टूक होना**—बहुत दुःख होना—चेतक के मर जाने पर प्रताप का कलेजा दो टूक हो गया।

५८. **कांटों पर पांव रखना**—मुसीबतें मोल लेना—नगर निगम का सदस्य बन कर तुम कांटों पर पांव रखने जा रहे हो।

५९. **कान खड़े होना**—सावधान होना—पुलिस की आवाज़ सुनते ही चोर के कान खड़े हो गये।

६०. **कान पर जूं न रेंगना**—बिल्कुल ध्यान न देना—अध्यापक ने छात्र को समय पर आने के लिए बार-बार कहा, पर उसके कान पर जूं तक न रेंगी।

६१. **काम चलाना**—कठिनता से निर्वाह करना—मध्यवर्गीय समाज आज बड़ी कठिनता से अपना काम चला रहा है।

६२. **काम तमाम करना**—मार डालना—उसने एक ही झटके में चोर का काम तमाम कर दिया।

६३. **किताब का कीड़ा होना**—अधिक पढ़ने वाला—मैं अपने अध्ययन-काल में किताब का कीड़ा रहा हूँ।

६४. **कुत्ते की नींद सोना**—सचेत रहना—परीक्षा के दिनों में परीक्षार्थी कुत्ते की नींद सोते हैं।

६५. **कुत्ते की मौत मरना**—बुरी तरह मरना—बंगाल के अकाल में लोग कुत्ते की मौत मरे।

६६. **कोल्हू का बैल बनना**—दिन-रात परिश्रम करना—किसान सुबह से शाम तक कोल्हू के बैल बने रहते हैं; तभी वे अपने खेतों में अधिक अन्न उपजा पाते हैं।

६७. खबर लेना—सजा देना—सरकार विद्रोहियों की खूब खबर लेती है।

६८. खरी-खोटी सुनाना—भला-बुरा कहना—काश्मीर को प्राप्त करने के लिए पाकिस्तान भारतवर्ष को खरी-खोटी सुनाता रहता है।

६९. खाक छानना—भटकते फिरना—आजकल एम० ए० कर लेने पर भी व्यक्ति नौकरी के लिए खाक छानते फिरते हैं।

७०. खाक में मिलाना—नष्ट कर देना—पिता की मृत्यु के उपरान्त सतीश ने उनकी सारी सम्पत्ति को खाक में मिला दिया।

७१. खून बहाना—मार-काट करना—'जलियांवाला' बाग में जनरल डायर ने निर्दोष भारतीयों का खून बहाया था।

७२. खून सूख जाना—बहुत डर जाना—मानसिंह के सामने अनेक डाकुओं का खून सूख जाता था।

७३. गूंगे का गुड़—अकथनीय आनन्द—आध्यात्मिक क्षेत्र में ब्रह्म की प्राप्ति का आनन्द गूंगे के गुड़ के समान होता है।

७४. गज भर की छाती होना—प्रसन्न होना—पुत्र की उन्नति देख कर पिता की छाती गज भर की हो जाती है।

७५. गढ़े मुर्दे उखाड़ना—पुरानी बातों पर प्रकाश डालना—गढ़े मुर्दे उखाड़ कर मुझे अधिक शर्मिन्दा न करो; उन बातों का ध्यान न करना ही ठीक है।

७६. गद्गद् होना—प्रसन्न होना—भारतवर्ष के स्वतन्त्र हो जाने पर भारतीय नेता गद्गद् हो गये।

७७. ग़म खाना—शान्ति रखना—बड़ों की डांट-फटकार सुनकर भी ग़म खा जाना चाहिए।

७८. गर्दन पर छुरी फेरना—अत्याचार करना—औरंगजेव सदैव हिन्दुओं की गर्दन पर छुरी फेरा करता था।
७९. गले का हार होना—अत्यन्त प्रिय होना—पं० जवाहरलाल नेहरू आजकल संसार के गले का हार बने हुए हैं।
८०. गागर में सागर—थोड़े में बहुत कह देना—कविवर विहारी ने अपने दोहों में गागर में सागर भर दिया है।
८१. गाढ़े का साथी—संकट में सहायता करना—रूस भारत का गाढ़े का साथी है।
८२. गिरगिट की तरह रंग बदलना—काम निकल जाने पर प्रतिज्ञा को न निभाना—चुनाव के समाप्त होने पर नेता-गण प्रायः गिरगिट की तरह रंग बदल जाते हैं।
८३. गुड़ियों का खेल—आसान कार्य—परीक्षा में सफलता प्राप्त करना गुड़ियों का खेल नहीं है।
८४. गोबर गणेश—मूर्ख—विवाहों में कभी-कभी बिल्कुल गोबर गणेश व्यक्ति को भी बहुत दहेज मिल जाता है।
८५. घड़ों पानी पड़ना—लज्जित होना—रिश्वत की बात प्रकट हो जाने से जज पर घड़ों पानी पड़ गया।
८६. घर उजड़ना—घर में किसी प्रकार की व्यवस्था न रहना—पत्नी के मर जाने पर पुरुष का घर उजड़ जाता है।
८७. घर का दीया बुझ जाना—इकलौता वेटा मर जाना—प्रिय पुत्र की मृत्यु हो जाने से उनके घर का दीया ही बुझ गया है।
८८. घर काटने को दौड़ना—दिल न लगना—वह प्रेम में इतनी पागल हो गई है कि श्याम के क्षणिक वियोग में भी उसे घर काटने को दौड़ता है।
८९. घर-घर पूजा होना—सर्वत्र मान होना—महात्मा गांधी की घर-घर पूजा होती है।

९०. **घर बसना**—विवाह होना—ईश्वर की कृपा से उसका घर बस गया है ।

९१. **घर में डाल लेना**—स्त्री बना लेना—भाई की मृत्यु के उपरान्त सोहन ने उसकी पत्नी को अपने घर में डाल लिया ।

९२. **घाव पर नमक छिड़कना**—दुःखी व्यक्ति को और भी दुःखी बनाना—कठोर बातें कह कर किसी के घाव पर नमक नहीं छिड़कना चाहिए ।

९३. **घुटने टेक देना**—हार मान जाना—हैदराबाद ने हिन्दुस्तान के आगे घुटने टेक दिये ।

९४. **घुन लगना**—रोग से कमज़ोर होना—घरेलू चिन्ता के कारण उसके स्वस्थ शरीर में घुन लग गया ।

९५. **घोड़े बेच कर सोना**—निश्चिन्त होकर सोना—परीक्षा समाप्त हो जाने पर विद्यार्थी घोड़े बेच कर सोया करते हैं ।

९६. **चम्पत हो जाना**—भाग जाना—नौकर घर का सारा सामान लेकर चम्पत हो गया ।

९७. **चांद पर थूकना**—निष्कलंक व्यक्ति पर दोष लगाना—सरदार पटेल की देश-भक्ति के बारे में तनिक भी शंका करना चांद पर थूकना है ।

९८. **चांदी का जूता लगाना**—रिश्वत देना—धनवान् व्यक्ति सरकारी अफसरों के चांदी का जूता मार कर अनैतिक कार्य भी करा लेते हैं ।

९९. **चादर तान कर सोना**—निश्चिन्त हो जाना—पुत्री का विवाह करके मां-बाप चादर तान कर सोते हैं ।

१००. **चार चांद लगना**—शोभा-वृद्धि होना—यौवन में प्रत्येक युवती के सौन्दर्य में चार चांद लग जाते हैं ।

१०१. **चारों खाने चित्त करना**—परास्त करना—स्वतन्त्रता-संग्राम में भारतीय वीरों ने अंग्रेजों को चारों खाने चित्त कर दिया था।

१०२. **चाल में आना**—धोखे में आना—भोली स्त्री साधू की चाल में आ कर ठगी गई।

१०३. **चिराग गुल होना**—मृत्यु हो जाना—भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में न जाने कितने घरों के चिराग गुल हो गये।

१०४. **चुटकियों में उड़ाना**—आसानी से हटाना—चीन भारत को चुटकियों में उड़ाना चाहता है।

१०५. **चूड़ियाँ पहनना**—कायरता दिखाना—दुश्मन पर आक्रमण क्यों नहीं करते ? यों चूड़ियाँ पहन कर बैठे रहने से तो भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

१०६. **चेहरे पर हवाइयां उड़ना**—घबरा जाना—पुलिस को देखते ही चोर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

१०७. **चोटी हाथ में आना**—वश में कर लेना—उसकी अत्यन्त गोपनीय बातों का पता लगा कर सतीश ने उसकी चोटी को अपने हाथ में ले लिया है।

१०८. **छक्के छुड़ाना**—हरा देना—शिवाजी ने औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये थे।

१०९. **छक्के छूटना**—हिम्मत हार जाना—पोरस जैसे वीरों की वीरता देख कर सिकन्दर के छक्के छूट गये।

११०. **छटी का दूध याद आना**—कठिन कष्ट में पड़ना—राणा प्रताप के सैनिकों ने अकबर के सैनिकों को छटी का दूध याद करा दिया था।

१११. **छप्पर फाड़ कर देना**—बिना परिश्रम किये धन मिलना—भगवान् जब देता है तब छप्पर फाड़ कर देता है।

११२. **छाती पर पत्थर रखना**—चुपचाप कष्ट सहना—उसने छाती पर पत्थर रख कर जीवन की सभी विपत्तियों को सहन किया।

११३. **छाती पर मूंग दलना** —निरन्तर दुःख देना —कुपुत्र सदैव अपने माता-पिता की छाती पर मूंग दलता रहता है।

११४. **छाती पर सांप लोटना** —ईर्ष्या करना —एक व्यक्ति की उन्नति देख कर दूसरे की छाती पर सांप लोटने लगता है।

११५. **छापा मारना**—अचानक जांच-पड़ताल करना—पुलिस ने होटल पर छापा मार कर शराब की कई बोतलें पकड़ीं।

११६. **छींका टूटना**—अनायास मिल जाना—हल्दीघाटी में अकबर को छींका टूटने से ही विजय मिल गई।

११७. **छोटे मुंह बड़ी बात कहना** —सामर्थ्य से अधिक कहना—पाकिस्तान की अधिकांश बातें छोटे मुंह बड़ी बात जैसी हैं।

११८. **जंगल में मंगल होना**—निर्जन में भी हर्ष होना—दो प्रेमियों के एक साथ रहने से जंगल में भी मंगल हो जाता है।

११९. **जबान देना** —प्रतिज्ञा करना—मैंने उसे नौकरी दिलवाने के लिए जबान दे दी है।

१२०. **जबान बदलना** —वचन भंग करना—जो मनुष्य अपनी जबान बदल लेते हैं उनका कोई मूल्य नहीं रहता।

१२१. **टका सा जवाब देना**—स्पष्ट अस्वीकार करना—जब मैं उसके पास सहायता के लिए गया तो उसने मुझे टके-सा जवाब दे दिया।

१२२. **टक्कर का होना**—किसी के समान होना—हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में शुक्ल जी की टक्कर का कोई नहीं है।

१२३. **टस से मस न होना**—जरा भी न हटना—नेहरू जी किसी विषय में अपने विचार व्यक्त करके टस से मस नहीं होते।

१२४. **टाँग अड़ाना**—व्यर्थ बाधा डालना—किसी भी काम में टाँग अड़ाना उसका स्वभाव बन गया है।

१२५. **जूते से बात करना**—अपमानित करना—ऐसे नीच व्यक्तियों से तो जूते से बात करनी चाहिए।

१२६. **जौहर दिखाना**—गुण प्रकट करना—वीर सैनिक ने युद्ध-क्षेत्र में अपने जौहर दिखा कर सेनापति को आश्चर्य-चकित कर दिया।

१२७. **झंडा गाड़ना**—अधिकार स्थापित करना—हैदराबाद में हिन्दुस्तान सरकार ने अपना झण्डा गाड़ दिया है।

१२८. **झगड़ा मोल लेना**—कलह करना—पड़ोसियों से कभी झगड़ा मोल नहीं लेना चाहिए।

१२९. **झाँसा देना**—धोखा देना—साहूकार ने झाँसा देकर निर्बल व्यक्ति से दुगने रुपये वसूल कर लिए।

१३०. **टाँग पसार कर सोना**—निश्चिन्त होना—परीक्षा के समाप्त होने पर वह टाँगें पसार कर सो रहा है।

१३१. **टूट पड़ना**—आक्रमण करना—बाज़ चील को देखते ही उस पर टूट पड़ा।

१३२. **टेढ़ी खीर**—कठिन काम—कवियों के लिए गद्य में लिखना टेढ़ी खीर है।

१३३. **टेढ़ी नजर करना**—क्रोध करना—सरदार पटेल के टेढ़ी नज़र करते ही निजाम हैदराबाद वश में आ गया।

१३४. **टोपी उछालना**—निरादर करना—उसने भरी सभा में मेरी टोपी उछालनी चाही थी, अतः मुझे भी क्रोध आ गया।

१३५. **ठंडा हो जाना**—मर जाना—शिकारी की दो गोलियाँ लगते ही शेर ठंडा पड़ गया।

१३६. **ठंडी सांस लेना**--सोच में उदास रहना या आहें भरना नुकसान तो हो ही चुका, अब ठण्डी साँस लेने से क्या लाभ ?

१३७. **ठोकर खाना**--गलती से नुकसान उठाना--मनुष्य को ठोकरें खाने के बाद ही अक्ल आती है।

१३८. **डंक मारना**--कष्ट पहुँचाना--साँप को चाहे जितना भी दूध पिलाया जाए, पर वह डंक मारना नहीं छोड़ता।

१३९. **डंका बजना**--शासन होना--रूस में साम्यवाद का डंका बज रहा है।

१४०. **डंके की चोट कहना**--स्पष्ट शब्दों में कहना--मैं तुमसे डंके की चोट कहे देता हूँ कि एक सप्ताह में मेरा सारा रुपया लौटा दो।

१४१. **डकार लेना**--हजम कर जाना--पाकिस्तान विदेशों का रुपया लेकर चुपचाप डकार लेता है।

१४२. **डींग मारना**--व्यर्थ बड़ाई करना--तुम जैसे हो वह मैं जानता हूँ, फिर व्यर्थ डींग क्यों मार रहे हो ?

१४३. **डूबती नाव को पार लगाना**--संकट से छुड़ाना--भगवान् ही डूबती नाव को पार लगा सकते हैं।

१४४. **ढिंढोरा पीटना**--किसी बात का प्रचार करना--उसने परीक्षा में पास होने का ढिंढोरा सारे नगर में पीट दिया।

१४५. **ढेर लगा देना**--अधिक संख्या में इकट्ठा करना--नौकरी मिलते ही उसने रुपयों का ढेर लगा दिया।

१४६. **तकदीर ठोकना**--भाग्य को दोष देना--परीक्षा में फेल होने पर उसने अपनी तकदीर को ठोक लिया।

१४७. **तकदीर फूट जाना**--दुर्भाग्य आ जाना--प्रेम आहुजा से मित्रता करने पर कमाण्डर नानावटी की तकदीर ही फूट गई।

१४८. **तिल का ताड़ बनाना**—छोटी बात को बढ़ाना—बात तो छोटी-सी थी, लेकिन उसने तिल का ताड़ बना कर झगड़ा मोल ले लिया।

१४९. **तिल धरने को जगह न होना**—बहुत भीड़ होना—सिनेमा घरों में तिल धरने को भी जगह नहीं मिलती।

१५०. **तीन तेरह होना**—भाग जाना—पुलिस को देख कर चोर तीन-तेरह हो गए।

१५१. **तूती बोलना**—प्रसिद्ध होना—राष्ट्रभाषा होने के कारण आजकल हिन्दी की तूती बोल रही है।

१५२. **तूफ़ान खड़ा करना**—उपद्रव मचाना—आजकल दिल्ली में गुण्डों ने तूफ़ान खड़ा कर रक्खा है।

१५३. **तोते की तरह रटना**—बिना सोचे-समझे रटना—विद्यार्थी प्रत्येक बात को तोते की तरह रट लेते हैं, समझते नहीं।

१५४. **त्योरियां चढ़ाना**—क्रोध करना—नाना साहब ने सन् १८५७ में अंग्रेजों पर त्योरियाँ चढ़ा ली थीं।

१५५. **थूक कर चाटना**—प्रतिज्ञा से हट जाना—चुनावों में सफल होने पर अधिकांश नेता थूक कर चाट लेते हैं।

१५६. **थैली खोलना**—अधिक खर्च करना—प्राचीन काल में राजा अपनी झूठी प्रशंसा सुन कर थैली खोल देते थे।

१५७. **दंग रह जाना**—विस्मित होना—गोपालकृष्ण गोखले की प्रतिभा देख कर विद्यार्थी दंग रह जाते थे।

१५८. **दांत पीस कर रह जाना**—क्रोध करके रह जाना—पाकिस्तान की काश्मीर प्राप्त करने की नीति देख कर भारतीय युवक दांत पीस कर रह जाते हैं।

१५९. **दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करना**—खूब उन्नति करना—राष्ट्रभाषा घोषित किये जाने के बाद से हिन्दी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही है।

१६०. **दुम दबा कर भागना**—डर कर भागना—शेर को अपने सामने खड़ा हुआ देख कर गीदड़ दुम दबा कर भाग गया।

१६१. **दूज का चाँद होना**—कम दिखाई देना—जब से तुम्हारी शादी हुई है तभी से तुम दूज के चाँद बन गए हो।

१६२. **दूध के दांत न टूटना**—अनुभवहीनता, बचपना—राम के अभी दूध के दांत भी न टूटे थे कि उन्हें वन जाने की आज्ञा मिल गई।

१६३. **दूध का दूध, पानी का पानी**—सच्चा न्याय—राजा भोज के समय में दूध का दूध और पानी का पानी होता था।

१६४. **देखें ऊँट किस करवट बैठता है**—परिणाम का निश्चित न हो पाना—काश्मीर पर अधिकार करने के लिए भारत और पाकिस्तान दोनों एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं, देखें ऊँट किस करवट बैठता है?

१६५. **दो दिन का मेहमान**—शीघ्र जाने वाला या मरने वाला—वृद्ध व्यक्ति रोगी हो जाने पर दो दिन के मेहमान होते हैं।

१६६. **धांधली मचाना**—बेकार का झंझट करना—आजकल दिल्ली में बदमाशों ने धांधली मचा रखी है।

१६७. **धाक जमाना**—प्रभुत्व स्थापित करना—क्रिकेट-जगत् में आस्ट्रेलिया ने सारे संसार में अपनी धाक जमा रखी है।

१६८. **धूल में मिल जाना**—नष्ट हो जाना—पिता की मृत्यु के उपरान्त पुत्रों ने अपव्यय करके सारी सम्पत्ति को धूल में मिला दिया।

१६९. **नकेल हाथ में होना**—वश में करने का अधिकार मिलना—आजकल पतियों की नकेल उनकी पत्नियों के हाथ में रहती है।

१७०. **नमक मिर्च लगाना**—बढ़ा-चढ़ा कर बातें करना—इस संसार में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है जो किसी भी बात में नमक मिर्च लगा कर दूसरों के कान भरते रहते हैं।

१७१. **नाक कटना**—प्रतिष्ठा भंग होना—मनुष्य को कभी भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे समाज में उसकी नाक कट जाय।

१७२. **नाकों चने चबाना**—परेशान करना—हल्दी घाटी की लड़ाई में राणा प्रताप की सेना ने मुग़लों की सेना को नाकों चने चबा दिए थे।

१७३. **नानी याद आना**—कष्ट अनुभव करना—परीक्षार्थी को परीक्षा की तैयारी करते समय नानी याद आ जाती है।

१७४. **नाम कमाना**—प्रसिद्धि प्राप्त करना—प्रसाद जी ने कविता, कहानी, नाटक आदि लिख कर हिन्दी-साहित्य में अच्छा नाम कमाया है।

१७५. **नीचा दिखाना**—घमंड तोड़ना—दारासिंह ने कुश्तियों में संसार के अच्छे-अच्छे पहलवानों को नीचा दिखा दिया है।

१७६. **नींद हराम होना**—व्यर्थ जागना—शादियों के अवसर पर पड़ोसियों की भी नींद हराम हो जाती है।

१७७. नौ दो ग्यारह होना—भाग जाना—पुलिस को देखते ही चोर नौ दो ग्यारह हो गये।

१७८. पत्थर की लकीर—अमिट सत्य—भारत के प्राचीन ऋषियों की वाणी पत्थर की लकीर होती थी।

१७९. पहाड़ टूट पड़ना—विपत्ति आ जाना—पुत्र की अचानक मृत्यु हो जाने से वृद्ध माता-पिता पर तो पहाड़ ही टूट पड़ा।

१८०. पाँव जमीन पर न टिकना—अत्यन्त घमंड करना—राम ने मैट्रिक की परीक्षा क्या पास कर ली है कि उसके पांव ही ज़मीन पर नहीं टिकते।

१८१. पानी-पानी होना—लज्जित होना—कैकेयी के कृत्य को सुन कर भरत पानी-पानी हो गया।

१८२. पीठ दिखाना—भाग जाना—वीर व्यक्ति युद्ध क्षेत्र में पीठ नहीं दिखाया करते।

१८३. पेट में चूहे दौड़ना—भूख लगना—बच्चों के पेट में जल्दी ही चूहे दौड़ने लगते हैं।

१८४. पैर उखड़ जाना—घबरा जाना—संग्रामसिंह से लड़ते समय बाबर की सेना के पैर उखड़ गए।

१८५. पौ बारह होना—अधिक लाभ होना—आजकल चीनी के व्यापारियों के पौ बारह हैं।

१८६. फबतियां कसना—व्यंग करना—किसी पर फबतियाँ कसना अच्छा नहीं होता।

१८७. फूटी आंख न सुहाना—अच्छा न लगना—पाकिस्तान को भारत की उन्नति फूटी आँख भी नहीं सुहाती है।

१८८. फूट डालना—शत्रुता बढ़ाना—अंग्रेज हमेशा ही हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालते रहे।

१८९. फूला न समाना—प्रसन्न होना—भारत के स्वतन्त्र होने का समाचार सुन कर भारतीय वीर फूले न समाये।

१९०. बहती गंगा में हाथ धोना—अच्छी हालत में सहयोग देना—धनिक व्यक्ति किसी धर्म के कार्य में थोड़ा-सा दान

देकर बहती गंगा में हाथ धो लेते हैं।

१६१. बाजी मार ले जाना—आगे निकल जाना—अन्तरिक्ष की उड़ान के मामले में रूस ने अमेरिका से बाज़ी मार ली है।

१६२. बायें हाथ का खेल—आसान काम—धनिक व्यक्तियों के लिए मोटर खरीदना बायें हाथ का खेल है।

१६३. बाल की खाल निकालना—व्यर्थ का सूक्ष्म विवेचन करना—तर्कशास्त्री प्रत्येक बात में बाल की खाल निकाला करते हैं।

१६४. बाल बांका न होना—हानि न होना—यदि ईश्वर किसी की रक्षा करता है तो कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सकता।

१६५. भागीरथ प्रयत्न—कठिन परिश्रम—सतीश ने परीक्षा पास करने के लिए भागीरथ प्रयत्न किया, फिर भी असफल रहा।

१६६. मज़ा किरकिरा करना--आनन्द में बाधा डालना--अंग्रेजों ने भारत में आ कर वाजिदअली शाह के विलास का मज़ा किरकिरा कर दिया।

१६७. महाभारत मचना—लड़ाई-झगड़ा होना—अशिक्षित परिवारों में अधिकतर महाभारत ही मचा रहता है।

१६८. मिट्टी पलीद करना—दुर्दशा करना—भारत के विभाजन ने देश की मिट्टी पलीद कर दी।

१६९, मुंह काला होना—कलंकित होना—पुत्र द्वारा चोरी किए जाने के कारण समाज में उसके पिता का मुंह काला हो गया।

२००. **मुंह की खाना**—नीचा देखना—शास्त्रार्थ करने में स्वामी दयानन्द से अच्छे-से-अच्छे पंडितों ने मुँह की खाई थी।

२०१. **मुंह पर हवाइयां उड़ना**—चेहरा फीका पड़ना—थानेदार को देख कर चोर के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

२०२. **मुंह में पानी भर आना**—लालच आना—कौए को मांस का टुकड़ा खाते देख कर लोमड़ी के मुँह में पानी भर आया।

२०३. **मिट्टी के मोल बिकना**—बहुत सस्ती होना—आजकल बाजार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो मिट्टी के मोल बिकती हो।

२०४. **मैदान हाथ आना**—युद्ध जीतना—हल्दी घाटी की लड़ाई में मैदान अकबर के हाथ आया।

२०५. **मुट्ठी गरम करना**—रिश्वत देना—इस युग में मुट्ठी गर्म करने से कठिन-से-कठिन कार्य भी सम्पन्न हो जाते हैं।

२०६. **मोरचा लेना**—युद्ध करना—पृथ्वीराज की सेना ने मोहम्मद गौरी की सेना से मोरचा लिया।

२०७. **रंग उड़ना**—मुँह फीका पड़ जाना—जुआ खेलते समय पुलिस के आ जाने से जुआरियों के चेहरे का रंग उड़ गया।

२०८. **रंग में भंग पड़ना**—मजा किरकिरा होना—शादी के अवसर पर कुछ उपद्रव हो जाने से रंग में भंग पड़ गया।

२०९. **रंग में रँग जाना**—प्रभाव में आ जाना—भारतीय युवक पाश्चात्य रंग में रँगे जाने में ही अपना गौरव समझते हैं।

२१०. **रंग-रेलियां मनाना**—आमोद-प्रमोद में समय बिताना—युवकों को अपना समय रंगरेलियाँ मनाने में व्यतीत नहीं करना चाहिए।

२११. **रोंगटे खड़े होना**—भयभीत होना—युद्ध का भयंकर दृश्य देखकर वीरों के भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

२१२. **रोम-रोम में समाना**—सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होना—प्रिय की स्मृति प्रेमी के रोम-रोम में समा जाती है।

२१३. **लकीर का फकीर होना**—पुरानी रीति पर चलना—अधिकांश वृद्ध व्यक्ति लकीर के फकीर होते हैं।

२१४. **लुटिया डुबो देना**—काम विगाड़ देना—जयचन्द ने मुहम्मद गौरी को बुला कर भारत की लुटिया डुबो दी।

२१५. **लोहा मान लेना**—आधीनता स्वीकार कर लेना—पानीपत का प्रथम लड़ाई में बाबर ने भारतीय वीरों की शक्ति का लोहा मान लिया था।

२१६. **लोहे के चने चबाना**—कड़ी मेहनत करना—स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भारतीय नेताओं को लोहे के चने चबाने पड़े थे।

२१७. **श्री गणेश करना**—प्रारम्भ करना—तुम प्रत्येक कार्य का श्रीगणेश तो अत्यन्त उत्साह से करते हो, पर उसे पूरा कभी नहीं करते।

२१८. **सन्नाटा छा जाना**—खामोशी छा जाना—अध्यापक के आते ही कक्षा में सन्नाटा छा गया।

२१९. **सफ़ेद झूठ**—पूर्णत: असत्य—मुकदमों में वकील सफ़ेद झूठ को भी सत्य सिद्ध कर देते हैं।

२२०. **सब्ज बाग़ दिखलाना**—लालच देकर बहकाना—धनी व्यक्ति नवयुवतियों को सब्ज बाग़ दिखला कर उनका सतीत्व नष्ट कर देते हैं।

२२१. सांप को दूध पिलाना—दुष्ट का उपकार करना--शत्रु को सहयोग देना सांप को दूध पिलाना है।

२२२. सिक्का जमाना—अधिकार करना—अमेरिका संसार के देशों पर सिक्का जमाना चाहता है।

२२३. सिर आंखों पर लेना—आदर के साथ स्वीकृत करना—प्रत्येक भारतीय नेहरू जी के वचनों को सिर आंखों पर लेता है।

२२४. सिर ऊँचा होना—इज्जत होना—पुत्र की प्रतिष्ठा से पिता का सिर भी ऊँचा होता है।

२२५. सिर पर खून सवार होना—मारने को तैयार होना—गुण्डों द्वारा अपने भाई पर अत्याचार होते देख कर मोहन के सिर पर खून सवार हो गया।

२२६. सिर से कफ़न बांधना—मरने को तैयार होना—गोआ जीतने के लिए भारतीय सैनिक सिर से कफ़न बाँध कर निकल पड़े थे।

२२७. सूर्य को दीपक दिखाना—किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का परिचय देने का प्रयास करना—डॉ० नगेन्द्र हिन्दी के माने हुए आलोचक हैं, उनके सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखलाना है।

२२८. सोने की चिड़िया—समृद्ध होना—एक समय था जब भारतवर्ष को सोने की चिड़िया के नाम से पुकारा जाता था।

२२९. हजामत कर डालना—ठगना—आजकल व्यापारी सीधे-सादे व्यक्ति की सहज ही में हजामत कर डालते हैं।

२३०. हड्डी-पसली एक करना—खूब मरम्मत करना—पुलिस ने मार-मार कर चोरों की हड्डी-पसली एक कर दी।

२३१. हथियार डाल देना—आत्म-समर्पण करना—गत युद्ध में जापान ने अंग्रेजों के सामने हथियार डाल दिए।

२३२. **हवा बाँधना**—झूठी बड़ाई करना—संसार में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो अपनी हवा बाँधते रहते हैं।

२३३. **हवाई किले बनाना**—कल्पना करना—हवाई किले बनाने से कभी मन की इच्छा पूरी नहीं होती।

२३४. **हाथ का मैल**—मामूली वस्तु—प्रतिष्ठा के सामने पैसा तो हाथ का मैल है।

२३५. **हाथ को हाथ न सूझना**—घना अन्धेरा—भादों की अधिकांश रात्रियों में हाथ को हाथ नहीं सूझता है।

२३६. **हाथ तंग होना**—पास में पैसा न होना—जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे व्यय करते रहते हैं उनका हाथ हमेशा तंग ही रहता है।

२३७. **हाथ धो बैठना**—नष्ट कर देना—वह अपनी असावधानी से जायदाद से हाथ धो बैठा।

२३८. **हाथ पसारना**—किसी से कुछ माँगना—मनुष्य को किसी के आगे हाथ नहीं पसारना चाहिए।

२३९. **हाथ धो कर पीछे पड़ना**—बुरी तरह सताना—अधिकारी जिस कार्यकर्ता के हाथ धो कर पीछे पड़ जाते हैं, उसकी नौकरी ही समाप्त हो जाती है।

२४०. **हाथ-पाँव फूल जाना**—डर से कुछ न कर पाना—डकैतों के आने का समाचार सुन कर ग्रामीणों के हाथ-पाँव फूल गए।

२४१. **हाथ बटाना**—सहायता करना—पुत्र को पिता के कार्य में हाथ बटाना चाहिए।

२४२. **हाथापाई होना**—लड़ाई-झगड़ा होना—दुर्वचन कहने पर हाथापाई शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाती है।

२४३. **हाथ साफ़ करना**—चुपके से चुरा लेना—चोर चलती गाड़ी में जेब पर हाथ साफ़ कर गया।

२४४. हाथों के तोते उड़ जाना—सुध-बुध खो देना—घर में सशस्त्र डाकुओं को देख कर सेठ जी के हाथों के तोते उड़ गये।

२४५. हाथों-हाथ बिकना—एकदम बिक जाना—कहानी-उपन्यास की पुस्तकें प्रायः हाथों-हाथ बिक जाती हैं।

२४६. हुक्का पानी बन्द करना—बिरादरी से निकालना—अन्तर्जातीय विवाह करने पर रामसिंह का हुक्का-पानी बंद कर दिया गया।

२४७. होश संभालना—समझदार होना—होश संभालने पर मनुष्य मान-अपमान का विचार करने लगता है।

कुछ अन्य प्रमुख मुहावरे

१. अंगुली उठाना—आलोचना करना—दोषी व्यक्ति की ओर सारा समाज अंगुली उठाया करता है।

२. अक्ल के घोड़े दौड़ाना—तरह-तरह के उपाय सोचना—मन्त्री-पद प्राप्त करने के लिए अपनी अक्ल के घोड़े दौड़ाने पर भी वह प्रत्येक वार असफल रहा।

३. अपना-सा मुंह लेकर रह जाना—असफलता से लज्जित होना—मोहन को पूर्ण विश्वास था कि उसे राम से आर्थिक सहायता प्राप्त हो जाएगी। किन्तु, राम के मना कर देने पर वह अपना-सा मुंह लेकर रह गया।

४. अपने हाथों कुल्हाड़ी मारना—अपनी हानि स्वयं करना—अफ़सरों की निन्दा करके तुम अपने ही हाथों से अपने कुल्हाड़ी मार रहे हो।

५. आँखें चार होना—आंख से आंख मिलना—जैसे ही उन दोनों की आंखें चार हुईं, वे एक-दूसरे के प्रेम में व्याकुल हो गए।

६. आँखों का तारा—अत्यन्त प्रिय—अपने अच्छे स्वभाव के कारण महेश सबकी आंखों का तारा बना हुआ है।

७. आंखों पर पर्दा पड़ना—धोखे में आ जाना—इस रेडियो को खरीदते समय मेरी आंखों पर पर्दा ही पड़ गया था। इसीलिए इसकी बाहरी चमक-दमक देख कर मैंने बिना सोचे-समझे सौ रुपये की वस्तु के पांच सौ रुपये दे डाले।

८. आसमान सिर पर उठाना—बहुत शोर करना—उसके छोटे-से अपराध पर भी तुमने तो आसमान ही सिर पर उठा लिया है।

९. कान खाना—अधिक बोलना या परेशान करना—मैंने तुम्हें कितनी ही बार बताया है कि मैं तुम्हें चन्दा नहीं दूंगा। फिर, तुम बार-बार मेरे कान क्यों खा रहे हो?

१०. खटाई में पड़ना—उलझन में पड़ना—मुकदमे में तुम्हारा जीतना मुश्किल है, क्योंकि विरोधी पक्ष की सच्ची गवाही के कारण मामला अब कुछ खटाई में पड़ गया है।

११. गर्दन उठाना—विरोध करना—राम के राजतिलक के अवसर पर कैकेयी ने गर्दन उठाई थी।

१२. गर्दन हिलाना—मना करना—यों हर बार गर्दन हिला देने से काम नहीं चलेगा। आज तो हम धर्मशाला के

लिए चन्दा ले कर ही जाएँगे।

१३. **गाल बजाना**—बढ़ा-चढ़ा कर कहना—तुम्हें उसकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए । उसकी तो आदत व्यर्थ ही गाल बजाते रहने की हो गई है।

१४. **गुड़ गोबर करना**—बना हुआ काम बिगड़ जाना—मैंने उसे बड़ी कठिनाई से सिनेमा चलने के लिए तैयार किया था, किन्तु तुमने उसके पिता जी से शिकायत करके सारा गुड़ गोबर कर दिया।

१५. **गुल खिलना**—अद्भुत परिणाम निकलना—हमने जैसे-तैसे करके परीक्षा तो दे दी है ; अब देखें क्या गुल खिलता है ?

१६. **घर का रास्ता लेना**—भाग जाना—लड़ने में स्वयं को असमर्थ देख कर राम ने चुपचाप घर का रास्ता लिया।

१७. **घर में चूहे कूदना**—अत्यन्त निर्धन होना—गरीबों के घर में सदैव चूहे ही कूदा करते हैं।

१८. **घाट-घाट का पानी पीना**—द्वार-द्वार भटकना—सिफ़ारिश न होने के कारण उसे नौकरी नहीं मिल रही। बिचारे को यों ही घाट-घाट का पानी पीना पड़ रहा है।

१९. **घाव हरा करना**—दुःखद प्रसंग की स्मृति कराना—पुरानी शत्रुता की बातें दुहरा कर तुम मेरे घाव को हरा क्यों कर रहे हो ?

२०. **चिराग ठंडा होना**—पुरुषार्थ का अन्त होना—भारत में ब्रिटिश-शासन का चिराग ठंडा हो गया है।

२१. **चोटी से ऐड़ी तक जोर लगाना**—कठिन परिश्रम करना—परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को ऐड़ी से चोटी तक का जोर लगाना पड़ता है।

२२. जल-भुन कर कोयला होना—अत्यन्त क्रुद्ध होना—उसकी अपमानजनक बातें सुन कर वह जल-भुन कर कोयला हो गया।

२३. ठोक-बजा कर देखना—अच्छी तरह देखना—किसी भी वस्तु को खरीदने से पहले उसे ठोक-बजाकर देख लेना चाहिए।

२४. ढेर करना—मार डालना—पुलिस ने मशीनगन चला कर अनेक डाकुओं का ढेर कर दिया।

२५. थाली का बैंगन—स्वार्थवश कभी एक मत और कभी दूसरे मत को मानना—राजनीति में भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्ति थाली के बैंगन के समान होते हैं।

२६. दांत गड़ाना—किसी वस्तु को लेने का भरसक प्रयत्न करना—पाकिस्तान काश्मीर पर दांत गड़ाये हुए है।

२७. दुनियां की हवा लगना—फैशन आदि करना—सुशीला पहले तो बहुत सीधी-सादी लड़की थी; लेकिन अब शायद उसे भी दुनियां की हवा लग गई है।

२८. धूप में बाल सफ़ेद न करना—बहुत अनुभवी होना—मैंने यों ही धूप में बाल सफ़ेद नहीं किये हैं। अतः तुम्हें मेरे अनुभवों से भी लाभ उठाना चाहिए।

२९. धोती ढीली होना—डर जाना—युद्ध-क्षेत्र में विपक्ष के असंख्य सैनिकों को देख कर उसकी धोती ढीली हो गई।

३०. नमक खाना—किसी का दिया हुआ खाना—मैंने उसका नमक खा लिया है; इसलिए उसका बुरा नहीं सोच सकता।

३१. **नाक में दम करना**—परेशान करना—गली के बच्चों ने शोर मचा कर लोगों की नाक में दम कर रखा है।

३२. **निन्यानवे के फेर में पड़ना**—रुपया जोड़ने का लालच होना—निन्यानवे के फेर में पड़ा होने के कारण वह आजकल भरपेट भोजन भी नहीं करता।

३३. **पगड़ी उछालना**—अपमान करना—आजकल अनेक लड़कियाँ पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावस्वरूप निर्लज्ज बन कर अपने माता-पिता की पगड़ी उछालती रहती हैं।

३४. **पाँव भारी होना**—गर्भवती होना—आजकल उसके पाँव भारी हैं। अतः उसे अधिक परिश्रम नहीं करना चाहिए।

३५. **पानी का बुलबुला**—शीघ्र नष्ट हो जाने वाला—मनुष्य का जीवन पानी के बुलबुले के समान है।

३६. **पेट का हलका होना**—किसी बात को गुप्त न रख सकने वाला—जीवन में कुछ बातें गोपनीय भी रखनी पड़ती हैं। अतः मनुष्य को पेट का हलका नहीं होना चाहिए।

३७. **प्राण-पखेरू उड़ना**—मृत्यु हो जाना—हृदय-गति रुक जाने के कारण उसके प्राण-पखेरू हमेशा के लिए उड़ गए।

३८. **बाल-बाल बचना**—दुर्घटना-ग्रस्त होने से थोड़ा-सा बच जाना—आज मैं मोटर के नीचे आने से बाल-बाल बच गया।

३९. **भीगी बिल्ली बन जाना**—भय के कारण चुप रहना—अफ़सर के सामने सभी क्लर्क भीगी बिल्ली बन जाते हैं।

लोकोक्ति क्या है

लोकोक्ति से अभिप्राय ऐसे वाक्य से है जो अपने शाब्दिक अर्थ को व्यक्त करने के स्थान पर किसी विशिष्ट अर्थ को व्यक्त करता है। मुहावरे और लोकोक्ति में मूल अन्तर यह है कि मुहावरा एक पूर्ण वाक्य न हो कर वाक्यांश होता है और वह स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। लेकिन, लोकोक्ति एक पूर्ण वाक्य है तथा उसमें किसी पूर्ण सत्य अथवा विचार को पूरी अभिव्यक्ति मिलती है। मुहावरों के समान लोकोक्तियों का प्रयोग भी भाषा को रोचक एवं भावों को सशक्त रूप प्रदान करने में सहायक होता है। आगे कुछ प्रमुख लोकोक्तियाँ दी जा रही हैं।

१. **अन्धा क्या चाहे दो आँखें**—इच्छित वस्तु मिलना—नरेश नौकरी का आकांक्षी था। कुछ समय पश्चात् उसे नौकरी मिल गई तो आकांक्षा समाप्त हो गई। ठीक ही कहा है—अन्धा क्या चाहे दो आँखें।

२. **अन्धी पीसे कुत्ता खाय**—असावधानी से अयोग्य को लाभ होना—भारत की सम्पत्ति को राजा लोग अन्धी पीसे कुत्ता खाय के समान पेंशन के रूप में ही खा रहे हैं।

३. **अन्धों में काना राजा**—निर्गुणों में अल्प गुणी का आदर होना—गांवों में दो-चार दवा जानने वाला भी वैद्य बन जाता है। इस प्रकार वहां अन्धों में काना राजा बन जाता है।

४. **अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता**—अकेला व्यक्ति महान् कार्य नहीं कर सकता—देश की उन्नति के लिए सभी का सहयोग आवश्यक है, क्योंकि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।

५. **अपनी करनी पार उतरनी**—जैसा करना वैसा फल पाना—राम पहले चोरी करता रहा। एक बार पकड़ा गया तो जेल जाना पड़ा। सच ही कहा है—अपनी करनी पार उतरनी।

६. **आँखों का अन्धा नाम नयनसुख**—गुणों के विरुद्ध होना—राम के भाई का नाम शेरसिंह है; किन्तु वह बिल्ली से भी डर जाता है। इसे कहते हैं आँखों का अन्धा नाम नयनसुख।

७. **आ बैल मुझे मार**—जान-बूझ कर कष्ट में पड़ना—मनुष्य को कभी भी कुसंगति में नहीं पड़ना चाहिए, नहीं तो 'आ बैल मुझे मार' के समान मुसीबतें घेर लेती हैं।

८. **आग लगे पर कुआं खोदना**—विपत्ति आने पर ही बचाव का प्रबन्ध करना—श्याम ने अपने बीमार भाई को पहले तो डाक्टर को दिखाया नहीं, अब लिए-लिए फिरता है। वह आग लगने पर ही कुआं खोदता है।

९. **आगे कुआं पीछे खाई**—दोनों ओर विपत्ति आना—यदि धर्म की रक्षा करता हूँ तो पुत्र से हाथ धोना पड़ता है, और यदि पुत्र की रक्षा करता हूँ तो धर्म जाता है; मेरे लिए तो आगे कुआं पीछे खाई है।

१०. **आटे दाल का भाव मालूम होना**—कठिनाई अनुभव होना—पाकिस्तान भारत को कमजोर समझता है, किन्तु लड़ाई के मैदान में उसे आटे दाल का भाव मालूम हो जाएगा।

११. **आप भला तो जग भला**—सभी अपने जैसे दिखाई देना—कुसुम को सभी बुरा कहते हैं, पर हमारे साथ तो उसका व्यवहार अच्छा ही रहा है। वस्तुतः हम तो यह जानते हैं कि आप भला तो जग भला।

१२. **आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता**—कष्ट के बिना सुख नहीं मिलता—कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए स्वयं कार्य करना चाहिए, क्योंकि आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता।

१३. **आम के आम गुठलियों के दाम**—किसी कार्य में दुगुना लाभ होना—गन्ने का रस निकाल कर उसके छिलकों के पंखे बना कर बेचे जा सकते हैं। इस प्रकार इस उद्योग में आम के आम और गुठलियों के दाम मिलते हैं।

१४. **उन्नीस-बीस का अन्तर होना**—बहुत कम का अन्तर होना—राम और श्याम दोनों जुड़वाँ भाई हैं। इसलिए उनकी शक्ल में केवल उन्नीस-बीस का ही अन्तर है।

१५. **उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे**—अपना दोष न मान कर पूछने वाले को दोष देना—चीन ने भारत की सीमा पर अधिकार कर लिया है। जब उसे मना करते हैं तो भारत पर ही दोषारोपण करता है। इसी को कहते हैं उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।

१६. **उल्टे बाँस बरेली को**—विपरीत कार्य करना—बिचारा मोहन शहर से गाँव के लिए गन्ने ले गया। उसके पिता जी ने कहा कि तुम तो आज उल्टे बाँस बरेली को ले आये; क्योंकि यहाँ तो पहले ही गन्ने की बहुत उपज होती है।

१७. **ऊँची दुकान फीका पकवान**—अधिक आडम्बर करना—बाहर से देखने पर तो होटल बहुत अच्छा लगता था, पर चाय बिल्कुल ठण्डी मिली। इसे देखते हुए ऊँची दुकान फीका पकवान की कहावत सत्य ही प्रतीत होती है।

१८. **ऊँट के मुँह में जीरा**—आवश्यकता से कम देना—हाथी को केवल एक गन्ना खिलाना तो ऊँट के मुँह में जीरे के समान है।

१९. **एक और एक ग्यारह**—एकता में शक्ति निहित है—देश में एकता रहने से किसी अन्य देश का आक्रमण करने का साहस नहीं हो सकता, क्योंकि एक और एक ग्यारह होते हैं।

२०. **एक तो चोरी दूसरे सीना जोरी**—अपराध के साथ धृष्टता दिखाना—राम ने कहा कि पहले तो तुम मुझसे बिना पूछे किताब ले गए, और अब माँगने पर लड़ते हो। एक तो चोरी दूसरे सीनाजोरी !

२१. **एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है**—एक अपराधी सारे समाज को कलंकित कर देता है—हमारे मोहल्ले में दो-एक बदमाश व्यक्ति आ गए हैं, जिन्होंने हम सभी को बदनाम कर रक्खा है। सच कहते हैं कि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।

२२. **ओछे की प्रीति बालू की भीति**—अनुदार का प्रेम स्थायी नहीं होता—आज तुमने मुझसे प्रेम तोड़ कर यह सिद्ध कर दिया है कि ओछे की प्रीति बालू की भीति के समान होती है।

२३. **ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती**—थोड़े पदार्थ से सन्तुष्टी नहीं होती—प्यास से व्याकुल व्यक्ति को एक चम्मच पानी पिलाना व्यर्थ है। कहीं ओस के चाटने से भी प्यास बुझती है।

२४. **कंगाली में आटा गीला**—मुसीबत पर मुसीबत आना—घर पर मेरी पत्नी बीमार पड़ी थी कि नौकरी भी छूट गई। वास्तव में कंगाली में आटा गीला होता है।

२५. **कहने से कुम्हार गधे पर नहीं चढ़ता**—हठी मनुष्य मनमानी ही करता है—मोहन वैसे तो हर समय कविता गुनगुनाता रहता है, किन्तु कहने पर नहीं सुनाता। ठीक ही कहा है कि कहने से कुम्हार गधे पर नहीं चढ़ता।

२६. **कहाँ राजा भोज, कहाँ गँगवा तेली**—दो वस्तुओं में अधिक भेद होना—आजकल अशिक्षित व्यक्ति भी शिक्षितों के समान ऊँचा पद प्राप्त करना चाहते हैं, पर ऐसा कैसे हो सकता है ? भला कहाँ राजा भोज, कहाँ गँगवा तेली।

२७. **काला अक्षर भैंस बराबर**—अनपढ़ व्यक्ति—भारत के गाँवों में अधिकतर ऐसे व्यक्ति रहते हैं जिनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है।

२८. **खाल ओढ़ाये सिंह की स्यार सिंह नहीं होय**—वेश या रूप बदलने से गुण नहीं बदलते—कायर व्यक्ति को जबरदस्ती लड़ाई में तोप लेकर भेजा जाए तो वह भाग आयेगा। सभी जानते हैं—खाल ओढ़ाये सिंह की स्यार सिंह नहीं होय।

२९. **गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है**—बुरे व्यक्ति के साथ सज्जन भी बदनाम हो जाते हैं—चोर का मित्र होने के कारण श्याम को भी जेल जाना पड़ा। तभी तो कहा है कि गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है।

३०. **घर का भेदी लंका ढाय**—आपस की फूट बरबाद करती है—जयचन्द ने गौरी से मिल कर भारत को परतन्त्र बना दिया। ठीक ही कहा गया है कि घर का भेदी लंका ढाय।

३१. **घर की मुर्गी दाल बराबर**—घर की उत्तम वस्तु का आदर न होना—रमेश की पत्नी घर पर अच्छा खाना बनाती है, पर उसे तो होटल का खाना ही अच्छा लगता है। उसके लिए तो घर की मुर्गी दाल बराबर है।

३२. **चांद को भी ग्रहण लगता है**—भले चरित्र में भी धब्बा लगता है—राधेश्याम बहुत सच्चरित्र व्यक्ति था, किन्तु साथियों का बुरा प्रभाव उस पर भी पड़ गया। सच है, चांद को भी ग्रहण लग जाता है।

३३. **चार दिन की चांदनी, फिर अंधेरी रात**—सुख क्षण-भगुर है—मनुष्य को सम्पत्ति का आनन्द लेना चाहिए। लक्ष्मी क्षण भंगुर है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात।

३४. **चिकने घड़े पर पानी नहीं पड़ता**—निर्लज्ज पर उपदेशों का प्रभाव नहीं पड़ता—सुनील ने देवेश को बुरे कामों से दूर रहने को कई बार समझाया, पर उस चिकने घड़े पर तो पानी ही नहीं पड़ता।

३५. **चिकने मुंह को सब चूमते हैं**—बड़ों की सब मिथ्या प्रशंसा करते हैं—साम्यवादियों के बुरे कर्मों को छिपा कर उनके कर्मचारी भी उनकी प्रशंसा ही करते हैं। पर इसमें उनका क्या दोष ? —चिकने मुंह को सब चूमते हैं।

३६. **चोरी का माल मोरी में**—बुरी कमाई अधिक समय तक नहीं रहती—हरीश जिन्दगी भर रिश्वत लेता रहा, किन्तु वृद्धावस्था में भूखों मरा। वस्तुतः चोरी का माल मोरी में ही जाता है।

३७. **जल में रह कर मगर से वैर**—आश्रयदाता से शत्रुता न करनी चाहिए—कार्यालय में कार्य करने के लिए निर्देशक को प्रसन्न रखना जरूरी है, क्योंकि जल में रह कर मगर से वैर नहीं किया करते।

३८. **जस दूल्हा तस बनी बरात**—बुरों को बुरों का साथ मिलना—राजा जयसिंह जैसा विलासी था, वैसे ही उसके साथी थे। ठीक भी है—जस दूल्हा तस बनी बरात।

३९. **जिन ढूंढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ**—कठिन परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता—कृष्ण ने परीक्षा के लिए कठिन परिश्रम किया जिससे वह कक्षा में सर्वप्रथम आया। सच है—जिन ढूंढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।

४०. **जैसा देश वैसा भेस**—परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन कर लेना—मैं पहले पाजामा पहनता था, अब पैन्ट। जैसा देश होता है वैसा भेष रखना पड़ता है।

४१. **जैसी तेरी कामरी तैसे मेरे गीत**—कार्य के अनुसार पारिश्रामिक न मिलना—आजकल नौकर उतना ही कार्य करते हैं जितना मालिक वेतन देता है। वास्तव में बात भी ठीक है—जैसी तेरी कामरी तैसे मेरे गीत।

४२. **तिनके की ओट पहाड़**---जरा से ज्ञान से अधिक काम बनना—लेखन-कार्य को मैं कठिन कार्य मानता था, किन्तु आपके अल्प सहयोग से वह मेरे लिए आसान हो गया। सच है—तिनके की ओट पहाड़ ही बन गया।

४३. **तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार**—प्रतिज्ञा पूर्ण करना—नेहरू जी को समझाना बेकार है। वे जो बात कह देते हैं उसे पूरा करते हैं। उनकी तो यही बात है कि तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।

४४. **थोथा चना बाजे घना**--असमर्थ अधिक बातें करता है--विधान सभा का सदस्य होने पर वह अपने सामर्थ्य की बहुत बड़ाई करता है। उसे अधिकार तो कुछ भी नहीं है, पर थोथा चना बाजे घना के अनुसार वह डींग बहुत मारता है।

४५. **दान की बछिया के दांत नहीं देखे जाते**—मुफ्त की वस्तु में दोष नहीं देखते—पुस्तक अच्छी है या बुरी, हमें क्या ? हमें तो मुफ़्त में मिली है। सच है दान की बछिया के दांत नहीं देखे जाते।

४६. **दीवार के भी कान होते हैं**—रहस्य छिपे नहीं रहते—चीन ने पनी नीति छिपाने की कोशिश की, पर वह बात छिपी न रह सकी; क्योंकि दीवार के भी कान होते हैं।

४७. **दुधार गाय की लात भली**—लाभ-प्राप्ति के लिए थोड़ा कष्ट सहना भी अच्छा है - मिल-मालिक यदि गालियाँ देते हैं तो क्या हुआ ? इनाम आदि भी तो वहीं से मिलता है। कहा भी है कि दुधार गाय की लात भी भली होती है।

४८. **दूध का दूध, पानी का पानी**—उचित न्याय करना—न्यायाधीश ने मोहन के मुकदमे में दूध का दूध पानी का पानी कर दिया।

४९. **न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी**--झगड़े का मूल कारण मिटने पर झगड़ा मिट जाना--सरदार पटेल ने रियासतों को मिटा कर आपसी झगड़ा मिटा दिया। इस प्रकार न रहा बाँस न बजी बांसुरी।

५०. **नदी-नाव संयोग**—थोड़े समय का मेल—मनुष्य की मित्रता नदी-नाव-संयोग के समान है, क्योंकि कभी-न-कभी मनुष्य मर कर बिछुड़ ही जाते हैं।

५१. **नाक दबाने से मुंह खुलता है**—सख्ती से कार्य होते हैं- चोर नरमी से कुछ भी बात नहीं बताते। उनका मुंह तो नाक दबाने से ही खुलता है।

५२. **नौ दिन चले अढ़ाई कोस**—सुस्ती से काम करना—तुम अब तक चार पुस्तकें ही पढ़ पाये हो। तुम्हारा तो वही हाल है कि नौ दिन चले अढ़ाई कोस।

५३. **नौ नगद न तेरह उधार**—उधार बेचने की अपेक्षा नकद विक्रय में लाभ कम होने पर भी नकद को ही प्राथमिकता देना—मैं अधिक लाभ का आकांक्षी नहीं हूँ, मुझे तो पैसे अभी दे दो। नौ नकद न तेरह उधार।

५४. **पढ़े हो पर गुने नहीं**—गहन अध्ययन न होना—अनेक व्यक्ति पी-एच० डी० कर लेने पर भी बिहारी-सतसई का ठीक अर्थ नहीं कर पाते। इसका कारण यही है कि वे पढ़े हुए तो हैं, पर गुने नहीं।

५५. **पराधीन सपनेहुँ सुख नाहिं**—गुलाम को सुख नहीं मिलता—रविवार के दिन भी अनेक अध्यापकों को विद्यालय में जाना पड़ता है। ठीक है—'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहिं।'

५६. **पानी पीकर जात पूछना**—विषय समाप्त होने पर विषय की पूछ-ताछ करना—प्रेम में जाति-बन्धन नहीं होता, किन्तु प्रेम का नशा उतरने के पश्चात् सामाजिक बन्धनों का ध्यान आता है। इसे कहते हैं—पानी पीकर जात पूछना।

५७. **बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद**—मूर्ख गुणों का महत्त्व नहीं समझता—रत्नाकर जी ने उद्धव-शतक के एक-एक पद में रस भर दिया है, पर 'बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद' के समान सभी व्यक्ति उससे आनन्दित नहीं हो पाते।

५८. **बावन तोले पाव रत्ती**—पूर्णतः ठीक बात कहना—नेहरू जी जो भी बात कहते हैं वह बावन तोले पाव रत्ती ठीक होती है।

५९. **बासी बचे न कुत्ता खाय**—वस्तु व्यर्थ न जाय—हम तो उतनी वस्तु ही लाते हैं जितनी काम में ला सकें। वस्तुतः हमारा तो यह सिद्धान्त है कि बासी बचे न कुत्ता खाय।

६०. **बिल्ली के भागों छींका टूटा**—अकस्मात् सम्पत्ति मिलना—दरिद्रता के कारण कृष्ण कठिनता से दिन काट रहा था; किन्तु बिल्ली के भागों छींका टूट गया। उसके चाचा पचास हजार रुपये छोड़ कर मर गये।

६१. **भरी थाली में लात मारना**—अभिमान से तिरस्कार करना—वेद! तुम नौकरी मत छोड़ो, नहीं तो पछताओगे। क्यों भरी थाली में लात मार रहो हो?

६२. **भागते भूत की लंगोटी भली**—आशा के विपरीत कुछ मिलना—वह फर्म दिवालिया होने वाली है। बिलों का यदि आधे पर भुगतान होता है तो वह ले लो; क्योंकि भागते भूत की लंगोटी भी भली होती है।

६३. **मियां की जूती मियां के सिर**—हानिकर्त्ता की युक्ति से उसी की हानि होना—राम ने श्याम को बदनाम करने की कोशिश की, लेकिन श्याम ने मियाँ की जूती मियाँ के सिर के समान उसी युक्ति से उसे बदनाम कर दिया।

६४. **समरथ को नहिं दोष गुसाईं**—बड़े व्यक्तियों में दोष नहीं देखा जाता—प्राचीन काल में राजा मांस, मदिरा एवं वेश्यागमन करते थे, पर उन्हें कोई कुछ नहीं कहता था। सच है—समरथ को नहिं दोष गुसाईं।

६५. **सांप मरे ना लाठी टूटे**—अपनी विना हानि किए शत्रु का नाश हो जाय—भारतीय राजनीतिज्ञों को चीन के विषय में इस प्रकार सोचना चाहिए कि सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

६६. **सिर मुंडाते ही ओले पड़े**—कार्य के प्रारम्भ में विघ्न आना—मैंने अभी लेखन-कार्य प्रारम्भ ही किया था कि बुखार आ गया। यह तो 'सिर मुंडाते ही ओले पड़े' वाली बात हुई।

६७. **सीधी उँगलियों घी नहीं निकलता**—सज्जनता से काम नहीं बनता—ऋणी से सख्ती से पैसा लेना चाहिए। वहाँ सीधी उँगलियों घी नहीं निकलता।

६८. **सौ सुनार की एक लोहार की**—बलवान् की एक चोट ही काफ़ी होती है—शिशुपाल ने कृष्ण को अनेक गालियाँ दीं, किन्तु कृष्ण ने सौ सुनार की एक लुहार की के समान उसका सिर ही काट दिया।

६९. **हाथ कंगन को आरसी क्या**—प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती—थानेदार साहब, आप घटनास्थल पर चल कर स्वयं निरीक्षण कर लीजिए। हाथ कंगन को आरसी क्या ?

७०. **हाथी के दांत दिखाने के और, खाने के और**—कपटी मनुष्य के आचार-विचार में अन्तर होता है—राजनीतिज्ञों की बातों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते हैं।

७१. **होनहार बिरवान के होत चीकने पात**—बचपन में ही महान् होने के लक्षण दिख जाते हैं—सुभाषचन्द्र बोस बचपन से ही अंग्रेजों के विरोधी बन गये थे। वे देशप्रेमी थे। तभी तो कहा है कि होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

मुद्रक—नूतन प्रेस, चाँदनी चौक, दिल्ली-६

हिन्दी समीक्षा चार्ट

: १ :

साहित्य

साहित्य क्या है, इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञात होता है कि यह शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द में भाववाचक प्रत्यय जोड़ देने से निर्मित हुआ है। संस्कृत में 'काव्य' को इसके पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया गया है। फलतः संस्कृत के विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई काव्य-सम्बन्धी परिभाषाएँ ही साहित्य की परिभाषाओं के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती हैं। हिन्दी एवं अंग्रेजी के विद्वानों ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं। इन सभी के मतों को सार रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. आचार्य कुन्तक—शब्द और अर्थ के सहभाव को साहित्य कहते हैं।

२. महावीर प्रसाद द्विवेदी—ज्ञान-राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है

३ हरिऔध—मनोवेगों को तरंगित करने वाली वह भाषा जो रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करती हुई पाठक तथा श्रोताओं के हृदय में एक अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कराये, साहित्य कहलाती है।

४. मैथ्यू आर्नल्ड—साहित्य जीवन की आलोचना है।

५. हडसन—साहित्य भाषा के माध्यम से जीवन को अभिव्यक्त करता है।

६. **हर्बर्ट रीड**—जहाँ अनुभूति और अभिव्यक्ति, भाषा तथा भाव का रमणीय प्रतिपादन हो वही साहित्य है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य की परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। वस्तुतः साहित्य की एक निश्चित परिभाषा प्रस्तुत करना बहुत कठिन कार्य है। फिर भी, उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर साहित्य की निम्नलिखित परिभाषा स्थिर की जा सकती है—

"साहित्य वह रचना है जो मानवानुभूति के विभिन्न पक्षों को स्पष्ट करने वाली हो तथा जिसमें भावों की दृष्टि से सत्य तथा शिव नामक तत्त्वों का समावेश हो और जो कला की दृष्टि से विभिन्न सौन्दर्यमूलक तत्त्वों से संयुक्त हो।

साहित्य के तत्त्व

साहित्य-सृजन के लिए दो पक्ष अनिवार्य होते हैं—भाव पक्ष और कला पक्ष। साहित्य के भाव पक्ष से हमारा तात्पर्य उन तत्त्वों के संयोजन से है जो उसके भावगत सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। मनुष्य पहले अनुभूति करता है और बाद में उसकी अभिव्यक्ति। चेतन प्राणी आस-पास के वातावरण से प्रभावित होता है, हृदय उसे अनुभव करने की क्षमता देता है और मस्तिष्क सोचने की। इसके लिए वह कल्पना का भी आश्रय लेता है और तदनन्तर अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करता है। अतः साहित्य के भाव पक्ष के अन्तर्गत भाव तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और कल्पना तत्त्व की गणना की जाती है। इसी प्रकार कला पक्ष से हमारा तात्पर्य उन तत्त्वों के संयोजन से है जो साहित्य को कलात्मक रूप में प्रस्तुत कर सकें। अब हम इन चारों तत्त्वों का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे।

१. **भाव तत्त्व**—साहित्य के विभिन्न तत्त्वों में भाव तत्त्व का प्रमुख स्थान है। वस्तुतः साहित्यकार मानसिक जगत् में स्थित उच्च भावों को ही साहित्य में अभिव्यक्त करता है। मानसिक प्रक्रिया में दो प्रकार की अनुभूतियाँ रहती हैं—१. संकल्पात्मक २. विकल्पात्मक। संकल्पात्मक अनुभूति में बुद्धि तत्त्व का महत्त्व अपेक्षाकृत कम होता है और उसमें भाव तत्त्व उभर जाता है। इस स्थिति में मन सक्रिय हो जाता है। इस सम्पर्क से जो प्रतिक्रिया होती है उसे आवेग कहते हैं। साहित्यकारों ने इन्हीं आवेगों को साहित्य का सच्चा प्रतिनिधि माना है। मनोवेगों के मूल रूप के कारण ही साहित्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक सम्पत्ति बन जाता है।

२. **बुद्धि तत्त्व**—साहित्य-सृजन में बुद्धि के सहयोग की नितान्त आवश्यकता है। कलाकार बुद्धि के द्वारा सत् और असत् में, धर्म और अधर्म में, सदाचार और दुराचार में, नीति और अनीति में, श्लील और अश्लील में भेद करता है। कलाकार अपनी रचना में भावों को प्रस्तुत करने से पूर्व उनके आदर्श रूप को निहारता है, और इसके लिए उसे बुद्धि तत्त्व का आश्रय लेना पड़ता है। वस्तुतः बुद्धि तत्त्व के अभाव में भाव भी उपादेय नहीं हो सकता। अतः साहित्यकार अपनी रचना में बुद्धि का उचित रूप में उपयोग करता है।

३. **कल्पना तत्त्व**—साहित्य में कल्पना तत्त्व का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्पना के द्वारा कलाकार अनदेखे स्थानों, घटनाओं, तथा पात्रों का वर्णन कर पाता है। कल्पना के आधार पर वह अमूर्त तत्त्व को मूर्त रूप में और नीरस वातावरण को सरस रूप में उपस्थित करने में सफल हो सकता है। कलाकार जिन बातों का वर्णन करता है तथा उनको जिस रूप में वर्णित करता है उन्हें उस रूप में देखना मानव-शक्ति के बाहर की बात है। ऐसे वर्णन करने के लिए

उसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है उसे कल्पना कहते हैं। इस कल्पना के अभाव में कलाकार किसी भी रचना को जन्म देने में सफल नहीं हो सकता।

४ **शैली तत्त्व** – शैली तत्त्व साहित्य के कला पक्ष के अन्तर्गत आता है। इसमें भाषा, अलंकार, छन्द, रीति आदि के उचित नियोजन की ओर ध्यान रखा जाता है। उत्कृष्ट शैली के अभाव में साहित्य के अन्य तत्त्व शिथिल प्रतीत होने लगते हैं। वस्तुतः शैली सम्बन्धी विभिन्न उपादानों का निजी महत्त्व है। परिष्कृत तथा सशक्त भाषा ही उचित अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ हो सकती है। अलंकार साहित्य के शैली तत्त्व को पुष्ट करते हैं; और छन्द-निर्वाह साहित्य में प्रवाह की वृद्धि करता है। अतः शैली ही वह दर्पण है जिसमें लेखक का प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। शैली का सम्बन्ध लेखक के निजी व्यक्तित्व से होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने 'Style is the man' कहकर शैली का स्पष्ट महत्त्व स्वीकार किया है।

साहित्य को प्रभावोत्पादक, सरस एवं सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने के लिए इन चारों तत्त्वों अर्थात् भाव तत्त्व, बुद्धि तत्त्व, कल्पना तत्त्व और शैली तत्त्व का उचित नियोजन करना आवश्यक है।

साहित्य और समाज

साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध है। ये दोनों अपने अस्तित्व और निर्माण में एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं। मानव-जीवन के दो पक्ष हैं—व्यक्तिगत और सामाजिक। साहित्य का इन दोनों पक्षों के साथ गहरा सम्बन्ध है। जो साहित्यकार अपनी रचनाओं में जन-जीवन को स्थान नहीं देते अथवा युगीन समस्याओं का प्रतिपादन नहीं

करते उनका साहित्य नीरस और निर्जीव हो जाता है। अतः साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह जन-जीवन को भली-भाँति समझे और फिर उसे अपनी रचनाओं में समझाने की चेष्टा करे।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। साहित्य-कार की आत्माभिव्यक्ति में यही सामाजिकता विद्यमान रहती है। साहित्य में जीवन के सभी पक्षों का चित्रण होता है। साहित्यकार अपने साहित्य में अपने समय की भावनाओं और विचारों को समुचित स्थान देते हैं। समाज कवि और लेखकों को बनाता है और लेखक तथा कवि अपने उच्च विचारों की अभिव्यक्ति करके स्वस्थ समाज का निर्माण करते हैं।

साहित्य समाज का दर्पण है। किसी जाति या समाज के साहित्य का अध्ययन करके हम उस जाति या समाज की विशेषताओं से परिचित हो सकते हैं। जिस युग में जैसा समाज होता है, उस युग में उसी के अनुरूप साहित्य निर्मित होता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास इसी तथ्य का परिचायक है। हिन्दी के आदिकालीन साहित्य में वीर रस और उसकी पृष्ठभूमि में शृंगार रस की प्रधानता पाई जाती है। वस्तुतः उस समय समाज में वीरता तथा शृंगारि-कता प्रिय थीं। अतः समाज का दर्पण होने के कारण साहित्य में भी इन भावों को व्यक्त किया गया। युग में परि-वर्तन आने के फलस्वरूप वीरगाथा काल के बाद भक्ति-प्रधान रचनाएँ लिखी गईं। तत्कालीन समाज में भक्ति-भावना की ही प्रधानता थी। भक्तिकाल के बाद रीतिकालीन साहित्य मे शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई। इस परिवर्तन का कारण भी सामाजिक वातावरण का बदल जाना ही था। आधुनिक काल में भी भारतीय समाज

में अनेक परिवर्तन हुए हैं, जिनके फलस्वरूप हमारे साहित्य में समाज-सुधार, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक, गाँधीवादी, प्रगतिवादी आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से सम्बद्ध रचनाएँ लिखी गई हैं।

यदि साहित्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध न होता तो साहित्य इतना विकसित नहीं हो सकता था। साथ ही, यदि साहित्य में व्यक्ति-विशेष के निजी भावों का प्रतिपादन होता तो उस व्यक्ति के नष्ट हो जाने पर साहित्य भी नष्ट हो जाता। किन्तु, साहित्य व्यक्ति की सम्पत्ति होकर भी समाज और राष्ट्र की स्थायी निधि है—क्योंकि उसमें सामाजिक समस्या और विचारधारा को भी प्रस्तुत किया जाता है।

: २ :

कविता

किसी भी पद्यात्मक रचना को काव्य या कविता कहते हैं। संस्कृत में 'काव्य' शब्द का प्रयोग साहित्य के पर्यायवाची शब्द के रूप में भी किया गया है। किन्तु, कविता केवल पद्यात्मक रचना को ही कहते हैं।

कविता की परिभाषा—भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने कविता की परिभाषा अनेक प्रकार से की है। इनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

१. **आचार्य विश्वनाथ**—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं।

२. **पण्डितराज जगन्नाथ**—"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहते हैं।

३. मम्मट—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि" अर्थात् दोष-रहित, गुण-युक्त और कहीं-कहीं अलंकारों से युक्त शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

४. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।"

५. कॉलरिज—"उत्तम शब्दों का उत्तम क्रम-विधान ही काव्य है।"

६. वर्डस्वर्थ—"कविता शान्ति के क्षणों में स्मृत प्रबल मनोवेगों का सहज उच्छलन है।"

७. मैथ्यू आर्नल्ड—"कविता काव्य-सत्य और काव्य-सौन्दर्य के प्रकाश में की गई जीवन की आलोचना है।"

८. जॉनसन—"कविता एक छन्दोबद्ध रचना है। यह सत्य और आनन्द के सम्मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का आश्रय लिया जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कविता का यह लक्षण दिया जा सकता है—"कविता कवि की वह साधना है, जिसमें प्रकृति और जीवन के सत्य की स्वच्छ, सरस और संगीतमय अभिव्यक्ति रहती है। हृदय तत्त्व पर आधारित होने के कारण वह अन्तर्वृत्तियों का परिष्कार कर आत्मा का उन्नयन करते हुए मानव-मन में आनन्द का संचार करती है।"

काव्य की आत्मा

काव्य की आत्मा से हमारा तात्पर्य उस व्यावर्त्तक धर्म से है जिसका अभाव काव्य की सत्ता को नष्ट कर

देता है। काव्यात्मा के निर्धारण के सम्बन्ध में संस्कृत काव्यशास्त्र में मुख्य रूप से पाँच सम्प्रदायों का उल्लेख हुआ है—अलंकार सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, रस सम्प्रदाय। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—

१. **अलंकार सम्प्रदाय**—इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन आचार्य भामह ने किया था। दण्डी, उद्भट, रुय्यक, जयदेव आदि इस सम्प्रदाय के पोषक आचार्य हैं। भामह ने '**न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्**' कह कर काव्य-सौन्दर्य के लिए अलंकारों की अनिवार्य आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। पीयूषवर्षी जयदेव ने तो यहाँ तक कह दिया है कि जो व्यक्ति काव्य को अलंकार-रहित मानता है वह अग्नि को भी उष्णताहीन क्यों नहीं मान लेता ?

अलंकारवादियों ने अलंकार की परिधि में सौन्दर्य के सभी उपकरणों का समावेश किया है, किन्तु सामान्यतः अलंकार का अर्थ उक्ति-चमत्कार से ही है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह मानना पड़ेगा कि अलंकारों को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता—वस्तुतः न तो प्रत्येक चमत्कार को काव्य की संज्ञा प्रदान की जा सकती है, और न प्रत्येक काव्य में उक्ति-चमत्कार की अनिवार्य स्थिति ही रहती है।

परवर्ती विद्वानों ने अलंकार को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार नहीं किया है। आचार्य विश्वनाथ ने इन्हें शब्दार्थ के अस्थिर धर्म मान कर शोभाकर्त्ता के स्थान पर शोभा-वर्द्धक के रूप में स्वीकार किया है। स्वयं अलंकारवादी आचार्यों ने भी रसवत् और प्रेयस अलंकारों की कल्पना करके रस एवं भाव की महत्ता को स्वीकार किया है। अतः अलंकारों को काव्यात्मा के रूप में अन्तिम स्वीकृति नहीं दी जा सकती।

२. **वक्रोक्ति सम्प्रदाय**—इसके संस्थापक आचार्य कुन्तल अथवा कुन्तक हैं। इन्होंने वक्रोक्ति को काव्यात्मा

के रूप में प्रतिष्ठित किया है। वक्रोक्ति से उनका अभिप्राय विशेष प्रकार की कथन-शैली से है। इसके लिए उन्होंने **'वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभणिति'** शब्द का प्रयोग किया है।

वक्रोक्ति की महत्ता कुन्तक से पहले भी थी। भामह ने इसे सभी अलंकारों के बीज-रूप में स्वीकार किया था। कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त भी वक्रोक्ति के अलंकार-पक्ष से सम्बद्ध अवश्य रहा है, किन्तु उनकी मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने इसका सम्बन्ध काव्य के प्रत्येक तत्त्व से स्थापित कर दिया है। वर्ण-विन्यास से लेकर प्रबन्ध वक्रता तक के भेद-प्रभेद इसी तथ्य के परिचायक हैं।

किन्तु, परवर्ती विद्वानों ने वक्रोक्ति सम्प्रदाय का समर्थन नहीं किया। स्वयं कुन्तक ने वक्रोक्ति के अन्तर्गत रस की महत्ता को स्वीकार किया है। साथ ही, वक्रोक्ति सम्प्रदाय का झुकाव भी अलंकारों की ओर ही अधिक है। अतः जिन कारणों से अलंकार सम्प्रदाय प्रचलित नहीं हो सका, उन्हीं कारणों से वक्रोक्ति सम्प्रदाय भी समाप्त हो गया।

३. **रीति सम्प्रदाय**—रीति सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य वामन हैं। इन्होंने **'रीतिरात्मा काव्यस्य'** कह कर रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। 'रीति' से उनका अभिप्राय विशेष प्रकार के रचना-बन्ध से है—**"विशिष्टापदरचना रीतिः।"** यह वैशिष्ट्य गुणों के कारण सम्पादित होता है—**"विशेषो गुणात्मा"**। अतः काव्य-गुणों के आधार पर किया गया विशेष रचना-बन्ध 'रीति' है। किन्तु, इस सम्प्रदाय को भी काव्यात्मा के रूप में नहीं माना जा सकता। यह तो काव्य का बाह्य रूप-विधान है। अतः इसे आत्मा के स्थान पर काव्य का शरीर कहलाने का गौरव ही दिया जा सकता है।

वामन ने भी "दीप्तरसत्व कान्तिः।" कह कर रस की महत्ता स्वीकार की है। उनके 'गुणों' का सम्बन्ध भी रस से ही है। अतः विद्वानों ने रीति सम्प्रदाय को काव्य का शरीर-पक्ष ही माना है, आत्मा नहीं।

४. **ध्वनि सम्प्रदाय**—इस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य आनन्दवर्द्धन माने जाते हैं। ध्वनि की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा है कि जहाँ अर्थ अथवा शब्द अपने अभिधाजन्य अर्थ को त्याग कर विशेष अर्थ को व्यक्त करते हैं, उसे ध्वनि कहते हैं। यह सम्प्रदाय काफ़ी लोक-प्रिय हुआ, किन्तु परवर्ती विद्वानों ने इसे रस-सृष्टि के प्रधानतम साधन के रूप में ही स्वीकार किया है।

५. **रस सम्प्रदाय**—भरतमुनि ने रस को काव्यात्मा घोषित करके इस सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया। उनके बाद संस्कृत एवं हिन्दी के लगभग सभी विद्वानों ने इसी को काव्यात्मा माना है। वस्तुतः रस के अभाव में किसी भी उक्ति को काव्य की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। इसके अभाव में उक्ति प्रहेलिका या चित्र-काव्य आदि बन कर रह जाएगी।

वस्तुतः काव्यात्मा सम्बन्धी इन विभिन्न सम्प्रदायों में अलंकार, वक्रोक्ति एवं रीति तो काव्य के बाह्य-पक्ष से सम्बन्ध रखते हैं; और ध्वनि तथा रस सम्प्रदाय आन्तरिक पक्ष से। इन्हें क्रमशः देहवादी और आत्मवादी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। अतः अलंकार, वक्रोक्ति एवं रीति काव्य के शरीर का निर्माण करते हैं और ध्वनि तथा रस उसकी आत्मा का। ध्वनि और रस में भी रस का महत्त्व अधिक है। ध्वनिवादियों ने भी रस-ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ माना है। अतः रस ही काव्य की आत्मा है।

काव्य का प्रयोजन

जीवन में हम कोई भी कार्य विना किसी प्रयोजन के नहीं करते। इसी प्रकार काव्य भी मानव का निष्प्रयोजन प्रयास नहीं है। जिस प्रकार जीवन के प्रयोजनों की कोई निश्चित सीमा नहीं है, उसी प्रकार काव्य के प्रयोजन भी असंख्य हो सकते हैं। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचन किया है। उनमें से प्रमुख विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं—

१. **भामह**—काव्य का प्रयोजन प्रीति तथा कीर्ति उत्पन्न करना है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवन के चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—की उपलब्धि भी काव्य के द्वारा सहज ही हो जाती है।

२. **मम्मट**—काव्य के छः मुख्य प्रयोजन हैं—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥"

अर्थात् काव्य का प्रयोजन यश-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, लोक-व्यवहार का ज्ञान, अमंगल से रक्षा, लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति तथा स्त्री के समान मधुर उपदेश देना है।

३. **कुन्तक**—काव्य का प्रयोजन सहृदयों के मानस में रसोद्रेक करना है।

४. **फ्रायड**—अभुक्त वासनाओं की अभिव्यक्ति ही काव्य का चरम लक्ष्य है।

५. **एडलर**—समस्त साहित्य जीवनगत अभावों की पूर्ति है।

६. **ड्राइडन**—प्रीतिपूर्वक उपदेश देना ही काव्य का उद्देश्य है।

इन सभी काव्य-प्रयोजनों में आनन्द एवं लोकमंगल मूलभूत प्रयोजन हैं। इन्हीं की सिद्धि के लिए कवि काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है। इनमें भी आनन्द का स्थान ही सर्वोपरि है। यदि काव्य पढ़ कर प्रमाता को रस-प्राप्ति अथवा आनन्द-लाभ नहीं हुआ तो ऐसे काव्य की रचना करना व्यर्थ है। रस में औचित्य पर बल देकर भारतीय विद्वानों ने इसके लोकमंगल-पक्ष की अवहेलना भी नहीं की। अतः काव्य का प्रमुख प्रयोजन आनन्द-प्राप्ति है; और यह आनन्द अनैतिक न होकर लोकमंगलपरक होना चाहिए।

काव्य का वर्गीकरण

काव्य के दो भेद किए गए हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य।

प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध काव्य की परिभाषा देते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"प्रबन्ध काव्य में मानव-जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले—उसे मानव-भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले—प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इति-वृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता।" शुक्ल जी की इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए एवं हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों के अनुशीलन के उपरान्त उसकी निजी विशेषताएँ निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं—

१. इतिवृत्तात्मकता—प्रबन्ध काव्य में एक निश्चित इतिवृत्त होता है। यह इतिवृत्त जीवन की विविधता का दिग्दर्शन कराता है तथा नाटकीय संधियों की योजना के फलस्वरूप सुशृंखलित होता है।

२. **पात्र तथा चरित्र-चित्रण**—प्रबन्ध काव्य के पात्रों का चयन जीवन के विविध क्षेत्रों से किया जाता है। उनके चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का आश्रय लिया जाता है। उसका नायक किसी-न-किसी आदर्श को प्रस्तुत करता है।

३. **रस-योजना**—प्रबन्ध काव्य में नव रसों का समावेश होता है। शृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक रस प्रधान होता है। उसमें एकरसता नहीं होती—अर्थात् शेष रस भी अंगरूप में विद्यमान रहते हैं।

४. **भाषा-शैली**—प्रबन्ध काव्य की शैली अलंकृत, उदात्त तथा गरिमामयी होती है। रचना का श्रीगणेश करते समय नमस्कार, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा आदि के रूप में मंगलाचरण का विधान भी किया जाता है।

५. **उद्देश्य**—प्रबन्ध काव्य की रचना केवल मनोरंजन के लिए नहीं की जाती। राष्ट्र-प्रेम, जातीय-भावना, धर्म-प्रतिपादन अथवा आदर्श जीवन की प्रेरणा देना उसका उद्देश्य होता है। लेकिन यह उद्देश्य कथित न होकर व्यञ्जित होता है।

मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य से हमारा अभिप्राय उस रचना से है जो पूर्वापर अन्य छन्दों की मुखापेक्षी न होकर स्वतः ही रसास्वादन कराने में समर्थ होती है। मुक्तक आकार में संक्षिप्त होने चाहिएँ। संक्षिप्तता के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है, किन्तु सामान्यतः एक छन्द में सीमित रचना को ही मुक्तक कहा जाता है। इस संक्षिप्तता के कारण मुक्तक में प्रबन्ध काव्य के समान जीवन की सम्पूर्णता एवं विशदता के चित्र नहीं मिलते। मुक्तक काव्य की एक विशेषता यह है कि वह सरस होना चाहिए। प्रबन्ध काव्य में तो कहीं-कहीं नीरस पदों से भी काम चल जाता है।—

क्योंकि प्रबन्ध के प्रवाह में मग्न पाठक को नीरसता का बोध ही नहीं हो पाता; लेकिन मुक्तक काव्य पूर्वापर सम्बन्ध से रहित होता है। अतः उसे अनिवार्यतः रसपूर्ण होना चाहिए।

साहित्य में मुक्तक का निजी महत्त्व है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि **"यदि प्रबन्ध एक वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।"** लेकिन मुक्तक को प्रबन्ध से उच्चतर स्थान नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः मुक्तक में जीवन के किसी एक अंश का चित्रण ही किया जाता है, जबकि प्रबन्ध काव्य में उसके विविध रूपों को स्थान मिलता है। जीवन के किसी एक अंश का चित्रण कर देना अधिक सरल है, किन्तु सम्पूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत करना अधिक कठिन कार्य है। अतः मुक्तक का निजी महत्त्व होते हुए भी उसे प्रबन्ध काव्य से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता।

काव्य की कुछ प्रमुख विधाएँ

प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य के अनेक भेद किए गए हैं जिनमें महाकाव्य, खण्डकाव्य, एकार्थ काव्य और प्रगीत काव्य मुख्य हैं।

महाकाव्य

महाकाव्य जीवन की सर्वांगीणता का दर्शन कराता है। वह अपनी विशद और विस्तृत परिधि में समस्त राष्ट्र और जाति की संस्कृति को आत्मसात् किए रहता है। महाकाव्य की इसी महत्ता को देखकर काव्यशास्त्र के आदिकाल से ही उसके तत्त्वों का विवेचन एवं विश्लेषण होता रहा है, जिसे एक वाक्य में इस प्रकार कहा जा सकता है—**"महाकाव्य एक वृहदाकार समाख्यान काव्य है जिसमें उच्चतर चरित्रों का वर्णन रहता है और जिसके प्रवाह में**

घनत्व एवं गरिमा होती है।" यदि इस वाक्य का विश्लेषण किया जाय तो महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्त्व भी स्वयमेव स्पष्ट हो जाते हैं। वे इस प्रकार हैं—कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, काव्य-पदावली, उद्देश्य।

१. कथावस्तु—कथावस्तु काव्य का मेरुदण्ड है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसके लिए निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक माना है—

(अ) महाकाव्य की कथा इतिहास से उद्भूत अथवा लोक-प्रख्यात होनी चाहिए।
(आ) उसका आरम्भ आशीर्वाद, नमस्कार या वस्तु-निर्देश से होना चाहिए।
(इ) उसमें यथास्थान नूतन, मनोमुग्धकारी और काल्पनिक वृत्तों का संयोजन होना चाहिए।
(ई) इसका विभाजन कम-से-कम आठ सर्गों में होना चाहिए।
(उ) यह नाना प्रकार के वर्णनों से अलंकृत, विपुलाकार और सर्वत्र भिन्न वृत्तों से युक्त होना चाहिए।
(ऊ) उसके कथानक में सभी नाट्य-संधियों का गुम्फन होना चाहिए।

२. चरित्र-चित्रण महाकाव्य में चरित्र-चित्रण से तात्पर्य उसके विभिन्न पात्रों से है। महाकाव्य के पात्र भद्र, वैभवशाली, यशस्वी, कुलीन, सहज मानव-गुणों से युक्त तथा कथानक और उद्देश्य के अनुरूप होने चाहिएँ। उसका नायक तो अवश्य ही देवता अथवा धीरोदात्त, कुलीन एवं क्षत्रिय होना चाहिए।

३. काव्य-पदावली—काव्य-पदावली की दृष्टि से महाकाव्य का पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह क्षुद्र न हो, वरन् गरिमामयी और प्रसाद गुण से युक्त हो। वह अलंकारों और मुहावरों से युक्त एवं गम्भीर-से-गम्भीर तथा सरल-

से-सरल भावों को वहन करने में समर्थ होनी चाहिए। उसमें छन्दों का भी अपूर्व विधान होना चाहिए ; यद्यपि प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द के प्रयुक्त होने तथा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन हो जाने के कारण छन्द-वैविध्य को महाकाव्य में विशेष स्थान प्राप्त नहीं है।

४. उद्देश्य—महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक चतुर्वर्ग में से किसी एक की, अथवा सभी की, प्राप्ति कराना है। उसमें युग-विशेष की प्रमुख समस्या को प्रतिपादित करना भी कवि का अभीष्ट रहता है।

खण्डकाव्य

खण्डकाव्य से हमारा अभिप्राय उस रचना से है जिसमें लेखक जीवन का पूर्ण चित्र उपस्थित करने के स्थान पर किसी एक खण्ड-विशेष का चित्रण करता है। इसकी कथावस्तु के लिए ऐतिहासिक, अनैतिहासिक अथवा प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध आदि का कोई बन्धन नहीं है। इसके लिए केवल यही आवश्यक है कि एक ऐसे कथानक का आश्रय लिया जाय जो रोचक हो। इसकी कथावस्तु के लिए सर्गों का भी कोई बन्धन नहीं है।

खण्डकाव्य में पात्रों की संख्या अधिक न होकर कम ही रहती है। कथानक तथा आकार की लघुता के फलस्वरूप इसमें सभी रसों को स्थान नहीं मिल सकता, लेकिन यह आवश्यक है कि वह सरस तथा रसोद्रेक करने में समर्थ हो।

खण्डकाव्य की शैली के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित अथवा स्थिर सिद्धान्त नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि उसमें ऐसी शैली का आश्रय लिया जाय जो भावों को वहन करने में समर्थ हो। खण्डकाव्य के सम्बन्ध में यह भी आवश्यक है कि उससे किसी महत् उद्देश्य के प्राप्ति होनी चाहिए।

एकार्थ काव्य

आजकल हिन्दी में कुछ ऐसी काव्य-रचनाएँ देखने को मिलती है जिन्हें काव्य-रूप की दृष्टि से न तो खण्ड-काव्य कहा जा सकता है, और न महाकाव्य। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने ऐसी रचना को एकार्थं काव्य के अन्तर्गत रखा है तथा इसका स्थान महाकाव्य एवं खण्डकाव्य के मध्य स्थापित किया है। उनके अनुसार महाकाव्य का कथानक विभिन्न प्रकार की भंगिमाओं के साथ मोड़ लेता हुआ अग्रसर होता है, किन्तु एकार्थं काव्य के कथा-प्रवाह में मोड़ बहुत कम होते हैं। इस प्रकार की रचना में किसी एक भाव-विशेष की व्यंजना पर बल दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप कथानक का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।

प्रगीत काव्य

प्रगीत या गीति काव्य व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। इसके मूल तत्त्व इस प्रकार हैं—

१. **वैयक्तिकता**—गीति काव्य में कवि की निजी आशा-निराशा, क्षोभ-उत्साह, लज्जा-ग्लानि का उल्लेख होता है।

२. **आवेग दीप्ति**—प्रगीत काव्य जीवन के उन महत्त्वपूर्ण क्षणों की रचना होती है जब किसी मनोवेग से कवि की चेतना अन्तर्मुखी हो उठती है। फलतः गीति काव्य में उस समय के भावावेश की प्रबल आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति रहती है।

३. **एकान्विति**—प्रगीत काव्य आद्यन्त एक ही मूल भाव से सम्बद्ध होना चाहिए। उसमें यदि विविधता का समावेश किया जाए तो वह भी केन्द्रीय भाव की पुष्टि में सहायक होना चाहिए।

४. **संगीतात्मकता**—प्रगीत काव्य में संगीत तत्त्व का समावेश भी आवश्यक है। यह संगीत प्रगीत की कोमल-कान्त पदावली, अक्षर-मैत्री, वर्ण-मैत्री आदि पर निर्भर रहता है।

प्रगीत काव्य के प्रकार

प्रगीत काव्य का वर्गीकरण दो दृष्टियों से किया जा सकता है—(अ) विषय की दृष्टि से। (आ) शैली की दृष्टि से।

(अ) विषय की दृष्टि से भेद—प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से प्रगीत के आठ भेद किए जा सकते हैं। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. **राष्ट्रीय प्रगीत**—जिन प्रगीतों की रचना मातृभूमि के प्रति अनुराग और उसके दुःख-विनाश के उत्साह के फलस्वरूप होती है उन्हें राष्ट्रीय प्रगीत कहते हैं।

२. **प्रेम सम्बन्धी प्रगीत**—जिन प्रगीतों में प्रेम सम्बन्धी भावों का निरूपण किया जाता है उन्हें प्रेम सम्बन्धी प्रगीत कहते हैं।

३. **शोक प्रगीत**—जब व्यक्तिगत अथवा सामाजिक अभावों एवं पीड़ाओं से दुःखी होकर कवि का हृदय गीत के रूप में फूट पड़ता है तब वह गीत शोक प्रगीत के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है।

४. **विचारात्मक प्रगीत**—साधारणत: विचारों का प्रतिपादन प्रगीत की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। उसमें तो भावावेग की प्रधानता रहती है। लेकिन, विचारों का सर्वथा अभाव भी गीति काव्य में सम्भव नहीं है। विचार-हीन रचना किसी विक्षिप्त का प्रलाप मात्र हो सकती है। अत: जिन प्रगीतों में विचार भी आवेश का अंश बन जाते हैं उन्हें विचारात्मक प्रगीत कहा जाता है।

५. **व्यंग्यात्मक प्रगीत** जब अन्याय तथा अत्याचार को देख कर अथवा किसी अन्य कारण से कवि के हृदय का आवेग व्यंग्य-वाणी के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है तब व्यंग्य प्रगीतों की स्थापना होती है।

६. **नीतिपरक या उपदेशात्मक प्रगीत**—जब कवि अपने गीति काव्य में मानव-जाति के कल्याण के लिए नैतिक बातों अथवा उपदेशों का कथन करता है तब उनकी गणना इस वर्ग के अन्तर्गत की जाती है।

७. **रहस्यवादी प्रगीत**—जिन गीतों में कवि परोक्ष सत्ता के प्रति संकेत करता है उन्हें रहस्यवादी प्रगीत कहते हैं।

८. **भक्तिपरक प्रगीत**—जिन प्रगीतों में भक्त सगुण-साकार प्रयत्न की कल्पना करते हैं और उनसे वैय-क्तिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उन प्रगीतों को भक्तिपरक प्रगीत कहते हैं।

(आ) शैली की दृष्टि से भेद—शैली की दृष्टि से प्रगीत को सम्बोधन प्रगीत तथा चतुर्दशपदी नामक भेदों में विभाजित किया जा सकता है। अंग्रेजी साहित्य में इन रूपों का पर्याप्त प्रचलन है, किन्तु हिन्दी में ऐसी रचनाएँ बहुत कम लिखी गई हैं। इनमें से सम्बोधन प्रगीत में कवि किसी वस्तु को सम्बोधित करते हुए अपने भावों का प्रति-

पादन करता है। चतुर्दशपदी अथवा सॉनेट में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है, पर उसकी रचना चौदह पंक्तियों में की जाती है।

शैली के आधार पर गीति काव्य के दो अन्य प्रमुख भेद भी किए जाते हैं—लोक गीत तथा कला गीत। लोक गीत की शैली सहज, स्वाभाविक, ग्राम्य तथा अनगढ़ होती है, जबकि कला गीतों में कलात्मक प्रतिपादन तथा साहित्यिक स्तर की रक्षा करने का प्रयास रहता है।

: ३ :

नाटक

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक के स्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचन किया है। अब हम इनके मतों का पृथक्-पृथक् उल्लेख करेंगे।

भारतीय विद्वानों का मत

भारतीय विद्वानों ने नाटक के तीन तत्त्व माने हैं—वस्तु, नेता, रस।

१. वस्तु—कथावस्तु नाटक का प्रमुख तत्त्व है। यह प्रख्यात, उत्पाद्य अथवा मिश्र, किसी भी प्रकार की हो सकती है। इस कथावस्तु के दो भेद किये गए हैं—आधिकारिक तथा प्रासंगिक। आधिकारिक कथावस्तु का सम्बन्ध नाटक के प्रमुख पात्रों से होता है तथा प्रासंगिक कथावस्तु का सम्बन्ध गौण पात्रों से।

कथावस्तु के सुसम्बद्ध नियोजन के लिए उसमें कार्यावस्थाओं, अर्थ-प्रकृतियों तथा नाट्य-सन्धियों का यथास्थान निरूपण किया जाना चाहिए। इनका पृथक्-पृथक् परिचय इस प्रकार है—

(अ) **कार्यावस्था**—नाटक में फल-प्राप्ति की इच्छा से किए गए कार्य-व्यापार को कार्यावस्था कहते हैं। इनकी संख्या पाँच है—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम।

(आ) **अर्थ-प्रकृति**—कथावस्तु के जो चमत्कारपूर्ण अंग कथानक को कार्य अर्थात् फलागम की ओर ले जाते हैं उन्हें अर्थ-प्रकृति कहते हैं। ये भी संख्या में पाँच हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य।

(इ) **नाट्य-सन्धि**—कार्यावस्था तथा अर्थ-प्रकृतियों में सम्बन्ध स्थापित करनेवाली वस्तु नाट्य-संधि कहलाती है। इनके नाम ये हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण।

नाटक सामान्यत: अभिनेय होता है, किन्तु कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनका अभिनय नहीं किया जा सकता। अत: कथावस्तु का वह अंश, जो रंगमंच पर अभिनीत न होकर सूच्य मात्र होता है, अर्थोपक्षेपक कहलाता है। अर्थोपक्षेपक पांच प्रकार के होते हैं—विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार, प्रवेशक।

२. **नेता**—नायक या नेता प्रधान पात्र को कहते हैं। भारतीय नाटकों में नायक को सभी उच्च और उदार गुणों से सम्पन्न माना गया है। नायक के चार प्रकार हैं—१. धीरोदात्त, २. धीर ललित, ३. धीर प्रशान्त, ४. धीरोद्धत। नायक के अतिरिक्त नाटक की प्रधान स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं। विदूषक भी भारतीय नाटकों का एक प्रमुख पात्र है। यह राजा का विश्वास-पात्र तथा सलाहकार होता है और नाटक में हास्य-रस का समा करना इसका प्रमुख कार्य है।

३. **रस**—भारतीय विद्वानों ने नाटक में रस को पर्याप्त महत्ता दी है। प्रत्येक नाटक में श्रृंगार अथवा वीर में से कोई-न-कोई रस अंगीरूप में विद्यमान रहना चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों ने रस की कल्पना नहीं की है। उन्होंने नाटक के किसी-न-किसी उद्देश्य का होना आवश्यक माना है। वास्तव में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित उद्देश्य तथा भारतीय विद्वानों द्वारा निर्धारित रस तत्त्व में कोई विशेष विरोध नहीं है।

४. **अभिनयता**—भारतीय मनीषियों ने यद्यपि अभिनय तत्त्व का पृथक् से उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इसे एक अनिवार्य तत्त्व अवश्य माना गया है। अभिनय चार प्रकार का होता है—(i) आंगिक, (ii) वाचिक, (iii) आहार्य और (iv) सात्विक। आंगिक अभिनय में अंगों के संचालन द्वारा भाव प्रकट किये जाते हैं। वाचिक अभिनय के अन्तर्गत वाणी सम्बन्धी अभिनय आता है। कथोपकथन वाचिक अभिनय के अन्तर्गत ही आते हैं। अतः भारतीय विद्वानों ने कथोपकथन नामक तत्त्व का पृथक् उल्लेख नहीं किया है। आहार्य अभिनय के अन्तर्गत वेश-भूषा सम्बन्धी अभिनय की गणना की जाती है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कम्प, अश्रु आदि के माध्यम से भावाभिव्यक्ति सात्विक अभिनय कहलाती है। सात्विक अभिनय में भावों की प्रधानता रहती है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित तत्त्व

भारतीय विद्वानों के समान ही पाश्चात्य विद्वानों ने भी नाटक के तत्त्वों का पर्याप्त विवेचन किया है। उनके अनुसार नाटक के तत्त्व ये हैं—

१. कथावस्तु—नाटक की कथा ऐतिहासिक, काल्पनिक अथवा मिश्रित किसी भी प्रकार की हो सकती है। इस कथा के विकास में पाँच अवस्थाओं का होना आवश्यक है। ये अवस्थाएँ इस प्रकार हैं—(अ) प्रारम्भिक संघर्षमय घटना (Initial Incident) (आ) उत्कर्ष (Rising Action) (इ) चरम सीमा (Climax or Turning Point) (ई) अपकर्ष या निगति (Falling Action) (उ) निष्कर्ष (Conclusion)।

भारतीय मान्यता के अनुसार नाटक सदैव सुखान्त होता है, किन्तु पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार नाटक का अन्त सुखान्त या दुखान्त में से कोई भी हो सकता है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य नाटककार अपनी रचना में जीवन की यथार्थता पर अधिक बल देते हैं। वे कल्पित आदर्श का निरूपण करने के स्थान पर परिस्थितियों के अनुकूल ही रचना का अन्त करते हैं।

२. पात्र—पाश्चात्य विचारकों के मतानुसार कला जीवन की अनुकृति है। नाट्य-कला के अन्तर्गत यही अनुकृति अनिवार्यत: विद्यमान रहती है। इसलिए पाश्चात्य नाटककार अपने नाटकों में ऐसे पात्र रखते हैं जो जीवन के अधिक समीप होते हैं। उनका चयन वे जीवन के सभी क्षेत्रों से करते हैं। अर्थात् वे राजा-रंक सबल-निर्बल, भले-बुरे आदि सभी हो सकते हैं। उनमें भारतीय परम्परा के समान उच्च कुल, वर्ण आदि का कोई बन्धन नहीं हुआ करता। वे अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनकी सभी विशेषताएँ पाठक के सामने आ जाएँ। उनके पात्रों का चरित्र भारतीय नाटककारों के समान एक ही साँचे में ढला हुआ नहीं होता।

३. **कथनोपकथन**—नाटक का तीसरा आवश्यक तत्त्व कथनोपकथन माना गया है। यही तत्त्व नाटक को साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करता है। नाटक के कथनोपकथन आकार में संक्षिप्त, कथानक को आगे बढ़ाने वाले, पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले, सजीव तथा रोचक होने चाहिएँ।

४. **देशकाल**—देशकाल का अभिप्राय यह है कि नाटक में पात्रों की वेश-भूषा, उनके वार्तालाप आदि तत्कालीन जीवन के अनुरूप होने चाहिएँ। प्राचीन ग्रीक आचार्यों ने संकलन-त्रय के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार नाटक में वर्णित घटना किसी एक ही कार्य से सम्बद्ध होनी चाहिए तथा वह एक ही स्थान तथा एक ही समय में घटित होनी चाहिए।

५. **उद्देश्य**—साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाटक का उद्देश्य भी मानव-जीवन की आलोचना होना चाहिए। उसका मूल उद्देश्य केवल मनोरंजन न होकर समस्या का समाधान करना भी होता है।

६. **अभिनयता**—नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाते हैं। अतः उनमें अभिनयता का होना भी आवश्यक है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों का पारस्परिक अध्ययन करने से स्पष्ट है कि इन दोनों में विशेष अन्तर नहीं है। भारतीय विद्वानों तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कथावस्तु या वस्तु तथा पात्र और नेता नामक तत्त्व एक समान ही हैं। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने जिस कथोपकथन नामक तत्त्व का उल्लेख किया है, वह भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित वाचिक अभिनय के अन्तर्गत आ जाता है। भारतीय

विद्वानों द्वारा निर्धारित रस तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित उद्देश्य नामक तत्त्व भी एक ही हैं—क्योंकि प्रत्येक नाटक का उद्देश्य रस-सृष्टि करना भी होता है।

नाटक के प्रकार

प्रतिपाद्य विषय तथा शिल्प-विधान की दृष्टि से नाटक के अनेक भेद किए जा सकते हैं। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से नाटक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा धर्म-प्रधान हो सकते हैं। शिल्प-विधि की दृष्टि से एकांकी तथा रेडियो नाटक नामक भेद मुख्य हैं।

एकांकी नाटक

एकांकी नाटक से अभिप्राय उस रचना से है जिसमें किसी एक घटना को एक अंक में निबद्ध किया जाता है तथा उस अंक को आवश्यकतानुसार विभिन्न दृश्यों में विभाजित कर लिया जाता है। इसके तत्त्वों का परिचय निम्न-लिखित है—

१. **कथानक**—एकांकी का कथानक संक्षिप्त तथा स्पष्ट होना चाहिए। यद्यपि उसका चयन इतिहास, धर्म, पुराण, समाज-व्यवहार आदि विभिन्न क्षेत्रों में से किसी में से भी किया जा सकता है, किन्तु यह अपेक्षित है कि उसमें सम्पूर्ण जीवन के स्थान पर जीवन की किसी एक घटना अथवा प्रसंग का चित्रण हो।

२. **पात्र**—एकांकी में कम-से-कम पात्र होने चाहिएँ तथा उनका चरित्र-चित्रण करते समय सांकेतिक पद्धति का आश्रय लेना चाहिए।

३. **कथनोपकथन**—एकांकी के कथनोपकथन सरल, स्पष्ट तथा हृदयस्पर्शी होने चाहिएँ। उनमें पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने तथा कथानक को आगे बढ़ाने की क्षमता भी होनी चाहिए।

४. **संकलन-त्रय**—कथानक के उपयुक्त निबन्धन के लिए एकांकी में संकलन-त्रय का होना भी अपेक्षित है। इसके अनुसार कथानक के घटना-स्थल, घटना-समय तथा क्रिया-व्यापार की एकता होनी चाहिए।

५. **अभिनयता**—एकांकी नाटक के लिए यह तत्त्व प्राण-तुल्य है। प्रत्येक सफल एवं श्रेष्ठ एकांकी के लिए अभिनय योग्य होना आवश्यक है।

एकांकी नाटक तथा नाटक में अन्तर

एकांकी नाटक और नाटक में वही अन्तर है जो उपन्यास और कहानी में है। नाटक में सम्पूर्ण जीवन का चित्रण होता है, अनेक पात्रों की योजना होती है तथा वह कई अंकों में विभाजित होता है। लेकिन, एकांकी नाटक में मानव-जीवन के किसी एक अंग का निरूपण होता है तथा उसमें केवल एक ही अंक होता है। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में —"**एकांकी नाटक में अन्य प्रकार के नाटकों से यह विशेषता होती है कि उसमें एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करते हुए चरम-सीमा तक पहुँचती है। इसमें कोई अप्रधान अंग नहीं रहता। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिल कर पुष्प के समान विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं……।**"

रेडियो नाटक

तत्त्वों की दृष्टि से रेडियो नाटक सामान्य नाटक के समान ही होता है। इसमें और नाटक में यही अन्तर है कि नाटक की रचना रंगमंच के सिद्धान्तों के आधार पर की जाती है और इसकी रचना श्रव्य-कला के सिद्धान्तों के अनुरूप की जाती है। रेडियो नाटक की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वर्ण्य विषय ध्वनि, शब्द तथा संगीत के द्वारा ही पूर्णतः स्पष्ट हो जाए।

●

: ४ :

उपन्यास

उपन्यास शब्द अंग्रेजी के 'नावेल' (Novel) शब्द के हिन्दी-पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। लेकिन, सामान्यत उपन्यास से अभिप्राय उस गद्य-रचना से है जिसमें मानव-जीवन के सम्पूर्ण चित्र का कथात्मक आख्यान रहता है। उपन्यास के विधायक तत्त्वों का परिचय इस प्रकार है—

१. **कथावस्तु**—उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि किसी भी प्रकार की हो सकती है। किन्तु, उसमें मौलिकता, संभाव्यता, रोचकता, संघर्ष, तारतम्य, सुगठन आदि गुणों का होना

आवश्यक है। गठन की दृष्टि से औपन्यासिक कथा के दो भाग किए जा सकते हैं—आधिकारिक तथा प्रासंगिक। दोनों कथाएँ परस्पर मिली हुई होनी चाहिएँ।

२. **पात्र तथा चरित्र-चित्रण**—उपन्यास में ऐसे पात्र होने चाहिएँ जिनका मानव-जीवन से सम्बन्ध हो। ये पात्र दो प्रकार के हो सकते हैं—(अ) वर्गगत (आ) व्यक्तित्व-प्रधान। जो पात्र किसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं उन्हें वर्गगत पात्र कहते हैं तथा जो अपनी पृथक् विशिष्टता रखते हैं उन्हें व्यक्तित्व-प्रधान पात्र कहा जाता है। इन पात्रों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—स्थिर तथा गतिशील। जो पात्र विपरीत परिस्थिति में पड़ कर भी अपनी मूल प्रकृति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने देते उन्हें स्थिर पात्र कहते हैं तथा जो परिस्थिति के अनुरूप अपने जीवन को ढालते रहते हैं उन्हें गतिशील पात्र कहते हैं। पात्रों का चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक अथवा सांकेतिक किसी भी प्रणाली से किया जा सकता है। किन्तु, चरित्र-चित्रण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पात्र सजीव तथा स्वाभाविक हों।

३. **कथनोपकथन**—उपन्यास का तीसरा तत्त्व कथनोपकथन है। ये संक्षिप्त, पात्रानुकूल, कथानक को आगे बढ़ाने वाले, पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले तथा उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले होने चाहिएँ।

४. **देशकाल**—उपन्यासकार को देशकाल के औचित्य का भी निर्वाह करना चाहिए। जिस युग के कथानक को ग्रहण किया जाए उसी के अनुरूप पात्रों के वेश-विन्यास, वातावरण-चित्रण आदि का नियोजन किया जाना चाहिए।

५. **भाषा-शैली**—उपन्यास की भाषा-शैली सरल तथा प्रभावोत्पादक होनी चाहिए। वह पात्रानुकूल तथा

वातावरण के अनुसार परिवर्तित होती रहनी चाहिए तथा उसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का यथास्थान नियोजन किया जाना चाहिए।

६. **उद्देश्य**—उपन्यास का उद्देश्य मानव-मन का संस्कार तथा मनोरंजन करना होता है।

उपन्यास के प्रकार

प्रतिपाद्य विषय, तत्त्वों तथा उद्देश्य के आधार पर उपन्यास के अनेक भेद किए जा सकते हैं। प्रतिपाद्य की दृष्टि से इन्हें धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक आदि भेदों में विभाजित किया जा सकता है। तत्त्वों की दृष्टि से उपन्यास के घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान तथा घटना-चरित्र सापेक्ष नामक भेद किए जा सकते हैं। इसी प्रकार उद्देश्य की दृष्टि से इन्हें आदर्शवादी, यथार्थवादी तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवादी के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

●

: ५ :

कहानी

कहानी कहना और सुनना मानव-मन की पुरानी प्रवृत्ति है। संस्कृत में कथा-साहित्य से सम्बन्ध रखने वाली अनेक रचनाएँ मिलती हैं। अपने नवीनतम रूप में यह पश्चिम की देन है। कहानी की परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, किन्तु सामान्यतः कहानी से अभिप्राय उस गद्यात्मक रचना से है जो मानव-जीवन की किसी विशेष परिस्थिति, अनुभूति अथवा मनःस्थिति को सरस, रोचक एवं संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करती है।

कहानी के तत्त्व उपन्यास के समान ही हैं, किन्तु उनकी नियोजन-विधि में पर्याप्त अन्तर रहता है। ये तत्त्व इस प्रकार हैं—

१. **कथावस्तु**—कथावस्तु कहानी का प्राण तत्त्व है। इसका चयन जीवन और जगत् के किसी भी क्षेत्र से किया जा सकता है। इसमें सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं के स्थान पर जीवन की किसी एक मार्मिक घटना का चित्रण किया जाता है। इसका आरम्भ तथा अन्त बहुत आकर्षक तथा चमत्कारपूर्ण होना चाहिए। इस सम्बन्ध में कहा गया है—"Story is like a horse. It is the start and finish that counts most." प्रभावोत्पादन की दृष्टि से इसके कथानक के विकास की चार अवस्थाएँ हैं—प्रारम्भ, आरोह, चरम स्थिति, अवरोह।

२. **पात्र तथा चरित्र-चित्रण**—कहानी में जीवन की किसी एक घटना-विशेष का चित्रण होता है। फलतः उसमें पात्रों की संख्या अधिक नहीं हो सकती। पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह संकेतात्मक एवं नाटकीय शैली का आश्रय ग्रहण करे।

३. **कथोपकथन**—कथोपकथन मूलत: नाटक का अंग है, किन्तु रोचकता एवं कथानक को गति प्रदान करने के लिए कहानी, उपन्यास आदि में भी इनका आश्रय लिया जाता है। कहानी के कथोपकथन सरल, संक्षिप्त, चरित्र पर प्रकाश डालने वाले तथा कथानक का विकास करने वाले होने चाहिएँ।

४. **भाषा-शैली**—कहानी की भाषा पात्रानुकूल तथा भावों को वहन करने में समर्थ होनी चाहिए। उसमें लोकोक्ति तथा मुहावरों के प्रयोग द्वारा प्रभावोत्पादकता का विधान भी किया जाना चाहिए। लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह केवल आलंकारिक या प्रतीकात्मक ही न बन जाए।

५. उद्देश्य—उपन्यास के समान कहानी का उद्देश्य भी मानव-मन का परिष्कार करना होना चाहिए। उसमें मनुष्य को नग्न भौतिकवाद की ओर ले जाने वाली अस्वास्थ्यकर प्रवृत्तियों का तनिक भी समावेश नहीं होना चाहिए। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि कहानी का उद्देश्य सांकेतिक रूप में ही अभिव्यक्त किया जाना चाहिए। उसके स्पष्ट विधान से कहानी में उपदेशात्मकता तथा नीरसता आने का भय रहता है।

कहानी के प्रकार

प्रतिपाद्य विषय, शैली तथा उद्देश्य की दृष्टि से कहानी को अनेक रूपों में विभाजित किया जा सकता है। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से कहानी सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक आदि किसी भी प्रकार की हो सकती है। शैली की दृष्टि से कहानी आत्मकथात्मक, कथोपकथनात्मक, पत्रात्मक, प्रतीकात्मक आदि विभिन्न प्रकार की हो सकती है। इसी प्रकार उद्देश्य के आधार पर कहानी को आदर्शवादी, यथार्थवादी अथवा आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी वर्गों में रखा जा सकता है।

उपन्यास और कहानी में अन्तर

यद्यपि उपन्यास और कहानी के तत्त्व एक-समान हैं, किन्तु उन दोनों में पर्याप्त अन्तर है—

(i) उपन्यास में जहाँ सम्पूर्ण जीवन का चित्रण होता है, वहाँ कहानी में जीवन की किसी एक घटना का अंकन किया जाता है। (ii) उपन्यास में अनेक प्रासंगिक कथाएँ होती हैं, जो मुख्य कथा को आगे बढ़ाती हैं; लेकिन कहानी में केवल एक ही कथा होती है। (iii) उपन्यास में अनेक पात्रों की योजना की जाती है जबकि कहानी के पात्र

सीमित होते हैं। (iv) उपन्यास का कथानक विस्तृत होता है। अतः उसमें देशकाल अथवा वातावरण की योजना बड़ी सरलता से की जा सकती है। इसके विपरीत अपने सीमित आकार के कारण कहानी में देशकाल की समुचित योजना करना सम्भव नहीं होता। (v) वस्तुतः उपन्यास घटनाओं, पात्रों तथा चरित्रों का समूह होता है, किन्तु कहानी में इनमें से किसी एक की प्रधानता होती है।

●

: ६ :

निबन्ध

'निबन्ध' शब्द अंग्रेजी के 'ऐसे' (Essay) शब्द का हिन्दी-पर्याय है। किन्तु, निबन्ध और Essay शब्द के अर्थों में उतना ही अन्तर है जितना पूर्व और पश्चिम में। हिन्दी में निबन्ध शब्द का अर्थ है विशेष रूप से गठा हुआ; जबकि अंग्रेजी में निबन्ध शब्द का अर्थ है प्रयत्न। पाश्चात्य विद्वान् डॉ० जानसन के विचारानुसार निबन्ध मन की एक शिथिल विचार-तरंग है जो असंगठित, अपूर्ण और अव्यवस्थित होती है।

निबन्ध की यह परिभाषा आधुनिक युग में मान्य नहीं है। आज निबन्ध से अभिप्राय उस गद्य-रचना से है जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव, सजीवता, आवश्यक संगति तथा सम्बद्धता के साथ किया गया हो।

प्रस्तुत प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि साहित्य की सम्पूर्ण विधाओं में निबन्ध का विशेष महत्त्व है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन द्रष्टव्य है कि यदि गद्य कविता की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।

निबन्ध के तत्त्व

निबन्ध के तत्त्व इस प्रकार हैं—

१. **आन्तरिक शृंखलता**—निबन्ध में आन्तरिक अन्विति का होना आवश्यक है। उसमें जिन विचारों का प्रतिपादन किया जाए वे परस्पर सम्बद्ध होने चाहिएँ।

२. **व्यक्तिगत दृष्टिकोण**—निबन्ध में लेखक के निजी विचारों की अभिव्यक्ति रहती है। अतः प्रतिपादन में आत्मीयता का होना निबन्ध का महत्त्वपूर्ण अंग है। लेख में तो वस्तुनिष्ठ वर्णन हो सकता है, पर निबन्ध में नहीं।

३. **बुद्धि और हृदय का योग**—निबन्ध की गणना रसात्मक साहित्य के अन्तर्गत की जाती है। अतः उसमें केवल शुष्क बौद्धिकता का समावेश न हो कर हृदय-पक्ष का योग भी रहता है। अर्थात् निबन्धकार यथास्थान रसात्मक प्रसंगों का नियोजन करके उसे सरस बनाए रखता है।

४. **कलापूर्ण अभिव्यक्ति**—लेख की शैली अनगढ़ और कला-विहीन भी हो सकती है, किन्तु निबन्ध की अभिव्यंजना शैली सजीव व रोचक होनी चाहिए। उसकी भाषा विषयानुसार परिवर्तित होनी चाहिए।

निबन्ध की रचना गद्य में की जाती है, किन्तु अपवादस्वरूप कतिपय निबन्ध पद्यबद्ध भी हैं। पोप का 'Essay on Man' तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का 'हे कविते' निबन्ध इसी प्रकार के हैं।

निबन्ध का विषय क्षुद्रतम वस्तु से लेकर महान् आत्मा तक हो सकता है। उसके विषय का चयन समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य, दर्शन, मानव-जीवन आदि किसी भी क्षेत्र से किया जा सकता है; किन्तु यह आवश्यक है कि एक निबन्ध में किसी एक भाव या विचार का प्रतिपादन ही किया जाए।

निबन्ध के प्रकार

प्रतिपादन-शैली की दृष्टि से निबन्ध को तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(i) वर्णनात्मक, (ii) विचारात्मक, (iii) भावात्मक। इनका पृथक्-पृथक् परिचय इस प्रकार है—

१. **वर्णनात्मक निबन्ध**—जिन निबन्धों में विवरण तथा चित्रों की प्रधानता रहती है उन्हें वर्णनात्मक निबन्ध कहते हैं। इस प्रकार के निबन्धों में विषय का अनावश्यक विस्तार रहता है।

२. **विचारात्मक निबन्ध**—जिन निबन्धों में किसी विषय-विशेष से सम्बद्ध गम्भीर विचारों की अभिव्यक्ति रहती है उन्हें विचारात्मक निबन्ध कहते हैं। प्रतिपाद्य की दृष्टि से इनके तीन उपवर्ग किए जा सकते हैं—मनोवैज्ञानिक निबन्ध, दार्शनिक निबन्ध तथा साहित्यिक आलोचनात्मक निबन्ध।

३. **भावात्मक निबन्ध** जिन निबन्धों में भावुकता अथवा व्यंग्य का पुट रहता है वे भावात्मक निबन्ध कहलाते हैं। इनके भी दो उपभेद किए जा सकते हैं—रागात्मक निबन्ध तथा व्यंग्यात्मक निबन्ध। रागात्मक निबन्धों में देशभक्ति आदि पर लिखे गए निबन्ध आते हैं जबकि व्यंग्यात्मक निबन्धों में राजनीति, समाज आदि पर व्यंग्य किया जाता है।

समालोचना

'समालोचना' शब्द अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' (Criticism) शब्द का हिन्दी पर्याय है। यह संस्कृत की 'लोचृ' धातु में 'सम' उपसर्ग के योग से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है—'किसी वस्तु का भलीभांति अवलोकन करना'। अतः साहित्य के सन्दर्भ में 'समालोचना' से अभिप्राय साहित्य को सम्यक् रीति से देखने की एक विशेष व्यवस्था या विधि है। समीक्षा, आलोचना, विवेचना, मीमांसा, अनुशीलन आदि 'समालोचना' शब्द के विभिन्न पर्याय हैं।

आलोचक के अपेक्षित गुण

किसी की साहित्यिक कृति की समालोचना करने वाले व्यक्ति को 'आलोचक' कहा जाता है। यह अंग्रेजी के 'क्रिटिक' (Critic) शब्द का पर्यायवाची है। भारतीय साहित्यशास्त्र में इसके लिए टीकाकार, भाष्यकार, मीमांसक आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने आलोचक के लिए कतिपय गुणों का उल्लेख किया है, जिन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. **सहृदयता**—एक सफल एवं श्रेष्ठ समालोचक के लिए पहला अनिवार्य गुण यह है कि उसे सहृदय होना चाहिए। इसका कारण यह है कि किसी कृति अथवा कृतिकार का यथार्थ ज्ञान उसके साथ एकात्म हुए बिना प्राप्त नहीं हो सकता—और यह एकात्मकता सहृदयता द्वारा ही सम्भव है।

२. **गुण-ग्राहकता**—समालोचक में गुण-ग्राहकता होनी भी आवश्यक है। गुण-ग्राहकता ही व्यक्ति को किसी वस्तु अथवा कृति की समालोचना की ओर उन्मुख करती है।

३. **निष्पक्षता**—समालोचक को व्यक्तिगत, देशगत अथवा जातिगत राग-द्वेष की भावनाओं से अलग रहना चाहिए। इस निष्पक्षता के अभाव में वह किसी कृति की समालोचना करते समय पूर्ण न्याय नहीं कर पाता। वस्तुतः निष्पक्षता के अभाव में उसे परिचित व्यक्तियों की कृति में तो गुण-ही-गुण दिखाई देंगे तथा अन्यों की कृतियों में उसकी प्रवृत्ति दोष-दर्शन की ओर अधिक रहेगी।

४. **निर्भीकता**—समालोचक में निर्भीकता का होना भी आवश्यक है। कभी ऐसा भी हो सकता है कि उसके विचार दूसरे व्यक्तियों की विचार-धारा से भिन्न हों। ऐसी अवस्था में यदि वह निर्भीक न हुआ तो अपने विचारों का स्पष्ट प्रतिपादन नहीं कर पायेगा। वस्तुतः जो समालोचक भीरु स्वभाव के होते हैं वे निष्पक्ष समालोचना नहीं कर पाते; क्योंकि वे मित्रों तथा शत्रुओं से डरते रहते हैं।

५. **निर्णयात्मक तथा तार्किक शक्ति**—समालोचना का अर्थ है कृति के गुण-दोषों का विवेचन। इसके लिए आलोचक में निर्णय तथा तर्क करने की क्षमता होनी चाहिए। अपने मत को प्रस्तुत करने के लिए वह तर्क-वितर्क करते हुए ही अन्तिम स्थापना तक पहुँच पाता है।

६. **विद्वत्ता**—समालोचक का विद्वान् होना भी आवश्यक है। उसे लोक-जीवन का ज्ञान होना चाहिए। साहित्यशास्त्र की विभिन्न विधाओं का सैद्धान्तिक ज्ञान भी उसके लिए अनिवार्य है। अपने विचारों को सक्षम रूप में प्रस्तुत करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका भाषा पर भी अचूक अधिकार हो।

७. प्रतिभा – समालोचक का प्रतिभाशाली होना भी आवश्यक है। इसके अभाव में वह न तो समालोचना-कर्म में प्रवृत्त ही हो सकता है, और न अपनी रचना में प्रभावोत्पादकता ही ला सकता है।

८. सहानुभूति – समालोचक में सहानुभूति का होना भी बहुत आवश्यक है। उसे चाहिए कि वह किसी कृति की आलोचना करते समय ऐसी आलोचना करे जिससे रचयिता एकदम निरुत्साहित न हो जाए। रचनात्मक साहित्य के विकास के लिए आलोचक में इस सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण का होना आवश्यक है।

समालोचना के प्रकार

समालोचना का क्षेत्र बहुत विस्तृत और व्यापक है। इसे मूलतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—१. सैद्धान्तिक आलोचना २. व्यावहारिक आलोचना।

१. सैद्धान्तिक आलोचना–सैद्धान्तिक आलोचना के अन्तर्गत साहित्य से सम्बन्ध रखने वाली विविध विधाओं—काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवनी, रेखाचित्र आदि का विश्लेषण करने के उपरान्त उनके लक्षण निर्धारित किए जाते हैं। इस प्रकार की आलोचना के अन्तर्गत इस बात पर विचार किया जाता है कि किसी कृति की समालोचना करते समय किन नियमों का ध्यान रखना चाहिए ?

२. व्यावहारिक आलोचना – जब सैद्धान्तिक समालोचना को आधार रूप में ग्रहण करते हुए उसमें निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर रचना का मूल्यांकन किया जाता है तब उसे प्रयोगात्मक समीक्षा या व्यावहारिक आलोचना कहते हैं। इस प्रकार की समालोचना को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(अ) निर्णयात्मक, (आ) प्रभावाभिव्यंजक, (इ) व्याख्यात्मक।

(अ) **निर्णयात्मक आलोचना**—इस प्रकार की आलोचना-पद्धति में लेखक समालोचना के प्रचलित मानदण्डों को आधार मान कर किसी भी रचना के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे देता है। इस प्रकार की आलोचना में आलोचक कृति के निजी गुणों के स्थान पर साहित्यिक नियमों को अधिक महत्त्व देता है।

(आ) **प्रभावाभिव्यंजक आलोचना**—प्रभावाभिव्यंजक आलोचना में आलोचक उस प्रभाव का उल्लेख करता है जो किसी रचना का अनुशीलन करने के उपरान्त उसके मन पर अंकित हो जाता है।

(इ) **व्याख्यात्मक आलोचना**—व्याख्यात्मक आलोचना करते समय समालोचक रचना-विशेष की उपयुक्त व्याख्या करने के उपरान्त उसके साहित्यिक सौन्दर्य का निरूपण कर देता है। इस प्रकार की समालोचना में आलोचक सर्वप्रथम रचना के गुणों का अनुभव करता है और फिर उन गुणों की व्याख्या करते हुए उन्हें पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है।

व्याख्यात्मक आलोचना को पुनः विभिन्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) **ऐतिहासिक आलोचना**—ऐतिहासिक आलोचना से अभिप्राय उस समालोचना-पद्धति से है जिसमें आलोचक किसी भी रचना की समालोचना करते समय उसके समकालीन सामाजिक वातावरण को भी ध्यान में रखता है। वस्तुतः साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इसी कारण इस आलोचना-प्रणाली में रचना के समकालीन वातावरण की उपेक्षा नहीं की जाती।

(ii) **तुलनात्मक आलोचना**—तुलनात्मक आलोचना करते समय आलोचक दो विभिन्न लेखकों की एक

ही विषय से सम्बन्ध रखने वाली रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। तुलना करते समय प्रतिपाद्य विषय, भाषा-शैली, रस-योजना, प्रकृति-चित्रण आदि सभी बातों का ध्यान रखा जाता है।

आजकल आलोचना के क्षेत्र में अनेक वादों का भी आश्रय लिया जा रहा है। इस दृष्टि से समालोचना के चार भेद किए जा सकते हैं—१. नीतिवादी या समन्वयवादी आलोचना पद्धति २. सौष्ठववादी या स्वच्छन्दतावादी आलोचना पद्धति ३. मनोविश्लेषणवादी आलोचना पद्धति ४. प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी आलोचना पद्धति।

१. **नीतिवादी या समन्वयवादी आलोचना**—इस प्रकार की आलोचना में समालोचक किसी भी कृति की समालोचना करते समय लोक-मंगल की भावना का अधिक ध्यान रखता है। लोक-मंगल की दृष्टि से किसी रचना का मूल्यांकन करने के उपरान्त साहित्य-क्षेत्र में उसका स्थान निर्धारित कर दिया जाता है।

२. **सौष्ठववादी या स्वच्छन्दतावादी आलोचना**—स्वच्छन्दतावादी आलोचना के अन्तर्गत आलोचक शास्त्रीय सिद्धान्तों का आधार लेने के स्थान पर अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि को प्रमुखता प्रदान करता है।

३. **मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणवादी आलोचना**—मनोवैज्ञानिक आलोचना करते समय समालोचक इस बात का अधिक ध्यान रखता है कि किसी कृति की रचना करते समय लेखक की मनःस्थिति कैसी थी तथा उसके सृजन की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली थी?

४. **प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी आलोचना**—मार्क्सवादी समालोचना-पद्धति में किसी भी कृति की समालोचना करते समय अर्थशास्त्र या राजनीति की पृष्ठभूमि में मार्क्सवादी विचार-धारा को ही अपनी समीक्षा का आधार बनाया जाता है।

समालोचना की उपादेयता

साहित्य-क्षेत्र में समालोचना का निजी महत्त्व है। किसी कृति की व्याख्या और विवेचना करने के उपरान्त समालोचना ही इस बात का निर्णय करती है कि वह पाठक के लिए उपयोगी है अथवा नहीं ? आलोचना असत् साहित्य की गतिविधि का नियमन भी करती है। किन्तु, कुछ विद्वानों ने समालोचना की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के आक्षेप किए हैं। पहला आक्षेप यह है कि जिस युग में समीक्षा का सृजन अधिक होता है उस युग में उच्च कोटि की कविता नहीं लिखी जा सकती। आधुनिक काल और रीति काल की तुलना में भक्ति काल का काव्य इसीलिए श्रेष्ठ है कि उस युग में समीक्षा का सृजन लगभग नगण्य था। इस सम्बन्ध में दूसरा आक्षेप यह किया गया है कि समालोचना का आश्रय लेने से यह सम्भावना बनी रहती है कि कहीं पाठक आलोचक की धारणा को ही स्वीकार न कर ले। इस प्रकार समालोचक पाठक तथा कृति के मध्य बाधक बन जाता है। कभी-कभी मूल ग्रन्थ को पढ़ने के स्थान पर पाठक उसकी समालोचना पढ़ कर ही अपना काम चला लेता है।—और इस प्रकार मूल कृति की उपेक्षा कर दी जाती है। अनेक बार समालोचक किसी कृति के दोष-ही-दोष दिखा कर लेखक की प्रतिभा को कुंठित कर देते हैं। ऐसा करने से साहित्य का विकास अवरुद्ध होने लगता है।

लेकिन इन दोषों की स्थिति में भी आलोचना के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आलोचना ही वह साधन है जिसके द्वारा अनैतिक तथा अपरिपक्व साहित्य के विकास पर नियन्त्रण करके सत्साहित्य की रचना को प्रेरणा प्रदान की जाती है। अतः साहित्य-क्षेत्र में आलोचना का महत्त्व असन्दिग्ध है।

: ८ :

साहित्य की इतर विधाएँ

आज हिन्दी-साहित्य में अनेक नए रूपों का विकास हो रहा है। इन नए साहित्य-रूपों में रेखाचित्र, गद्य-गीत, रिपोर्ताज, पत्र तथा जीवनी प्रमुख हैं। निम्नस्थ पंक्तियों में इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

रेखाचित्र

रेखाचित्र से अभिप्राय उस गद्यात्मक रचना से है जिसमें लेखक शब्द रूपी तूलिका के माध्यम से किसी वस्तु या व्यक्ति-विशेष के आन्तरिक तथा वाह्य रूप का इस प्रकार वर्णन करता है कि उसका एक चित्र-सा निर्मित हो जाता है। साहित्य की नवीनतम विधा होने के कारण रेखाचित्र के विधायक तत्त्वों का अधिक विश्लेषण नहीं किया गया है। लेकिन, पात्र तथा सशक्त अभिव्यंजना इसके दो मूल तत्त्व माने जा सकते हैं। रेखाचित्रकार को चाहिए कि वह किसी वस्तु या व्यक्ति-विशेष को पात्र के रूप में ग्रहण कर उसका शब्दों द्वारा उसी प्रकार चित्र प्रस्तुत कर दे जिस प्रकार कोई फोटोग्राफर अपने कैमरे के द्वारा किसी स्थान या व्यक्ति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर देता है।

रेखाचित्र के प्रकार

प्रतिपाद्य विषय तथा शैली की दृष्टि से रेखाचित्र अनेक प्रकार के हो सकते हैं। प्रतिपाद्य की दृष्टि से इन्हें मानवेतर जड़ या चेतन जगत् सम्बन्धी तथा मानव-सम्बन्धी भागों में विभक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार शैली की दृष्टि से इन्हें कहानी-प्रधान तथा संस्मरण-प्रधान रेखाचित्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

गद्य गीत

गद्य गीत या गद्य काव्य उस रचना को कहते हैं जिसमें लेखक प्रगीत काव्य के भावों को गद्य की भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। ऐसी पद्यमयी भाषा का प्रभाव साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक पड़ता है—क्योंकि वह सरस तथा संगीतमय होती है। वस्तुतः जब गीत अपनी सीमा में न रह कर गद्य की ओर उन्मुख होने लगता है तथा गद्य अपनी परिधि को छोड़ कर गीत के समान आभासित होता है तब जिस नये साहित्य की सृष्टि होती है उसे गद्य गीत कहते हैं।

गद्य गीत के तत्त्व

गद्य गीत के विधायक तत्त्व वही हैं जो प्रगीत काव्य के माने जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि गद्य गीत में छन्दोबद्धता नामक तत्त्व नहीं होता। इस प्रकार गद्य गीत के आवश्यक तत्त्वों में वैयक्तिकता, आवेग दीप्ति, हार्दिकता तथा रागात्मक अन्विति का उल्लेख किया जा सकता है।

गद्य गीत के प्रकार

प्रतिपाद्य विषय के आधार पर गद्य गीत के दो भेद किए जा सकते हैं—१. आध्यात्मिक, २. लौकिक। आध्यात्मिक गद्य गीतों में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में अपने विचारों को पद्यमय गद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जबकि लौकिक गद्य गीतों में प्रणय आदि लौकिक भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है।

रिपोर्ताज

'रिपोर्ताज' हिन्दी-साहित्य की नवीनतम विधा है। इसमें किसी वृत्त अथवा घटना का विवरण इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका संक्षिप्त रूप पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाये और उसके हृदय को प्रभावित

कर दे। रिपोर्ताज के सम्बन्ध में दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—(i) इसमें वर्णित घटना अथवा वस्तु वास्तविक होनी चाहिए। (ii) घटना से सम्बन्ध रखने वाले पात्रों की मानसिक गतिविधियों का गहराई से रेखाचित्र की शैली में निरपेक्ष भाव से चित्रण करना चाहिए।

रिपोर्ताज नामक साहित्य-विधा अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही है। हिन्दी में उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। उसके तत्त्वों का विस्तृत निरूपण भी नहीं किया जा सकता।

पत्र

पत्र के रूप में भावों का प्रतिपादन करना भी साहित्य की नवीन विधा है। अंग्रेजी में इस रूप को 'Epistle' कहते हैं। पत्र-साहित्य से हमारा अभिप्राय उस लेख से है जो किसी दूर रहने वाले व्यक्ति-विशेष को काल्पनिक रूप में प्रेषित किया जाता है और जिसमें उस दूरस्थ व्यक्ति के प्रति लेखक की अपनी भावनाओं का प्रकाशन रहता है। पत्र में मूलत: दो गुणों का होना आवश्यक है। ये दो गुण हैं—१. आत्मीयता, २. स्वाभाविकता। आत्मीयता दो प्रकार की हो सकती है। अर्थात् जिस व्यक्ति को पत्र लिखा जा रहा है उस व्यक्ति के साथ लेखक का आत्मीय सम्बन्ध होना चाहिए तथा पत्र में लिखे गए लेख के द्वारा भी आत्मीयता का भाव प्रकट होना चाहिए। आत्मीयता के साथ ही लेख का स्वाभाविक होना भी आवश्यक है। यदि पत्र को पढ़ने के उपरान्त कृत्रिमता का तनिक भी आभास हुआ तो उसका परिणाम यह होगा कि लेखक के आत्मीय भावों का पत्र पढ़ने वाले के मन पर अभीष्ट प्रभाव न पड़ सकेगा। पत्र की भाषा-शैली इतनी सक्षम होनी चाहिए कि वह दूर बैठे हुए पाठक को उतना ही प्रभावित कर ले जितनी वह सामने बैठे हुए व्यक्ति को प्रभावित करती। शैली की दृष्टि से

पत्र का रोचक होना भी बहुत आवश्यक है। उद्देश्य की दृष्टि से पत्र साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न है। साहित्य की अन्य विधाओं का उद्देश्य सामान्य जीवन की व्याख्या करना होता है, जबकि इस विधा का उद्देश्य आत्म-जीवन की व्याख्या करना है।

जीवनी

साहित्य की प्रत्येक रचना में किसी-न-किसी रूप में मानव-जीवन का उल्लेख अवश्य रहता है। इस दृष्टि से सम्पूर्ण साहित्य ही जीवन के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है। किन्तु, 'जीवनी' नामक साहित्य-विधा के अन्तर्गत जीवनी से अभिप्राय उस रचना-विशेष से है जिसमें लेखक जीवन की वास्तविक घटनाओं के आधार पर किसी श्रेष्ठ व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं का रोचक ढंग से उल्लेख करता है।

जीवनी के तत्त्व

यद्यपि जीवनी के तत्त्वों के सम्बन्ध में अधिक विवेचन नहीं किया गया है, किन्तु सामान्यतः इसमें पांच तत्त्वों का होना आवश्यक है—१. घटना २. चरित्र-चित्रण ३. देशकाल ४. भाषा-शैली ५. उद्देश्य

१. **घटना**—कहानी तथा उपन्यास के समान जीवनी में भी घटनाओं का होना आवश्यक है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उपन्यास और कहानी की घटनाएँ तो काल्पनिक भी होती हैं, किन्तु जीवनी की घटनाएँ कल्पना-प्रसूत न होकर वास्तविक होती हैं।

२. **चरित्र-चित्रण**—जीवनी का मूल उद्देश्य श्रद्धेय पात्र की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन करना होता है। लेकिन, श्रद्धेय पात्र का चरित्र-चित्रण करते समय उसकी चारित्रिक दुर्बलताओं का भी उल्लेख होना

चाहिए। हां, इन दुर्बलताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उन दोषों के रहते हुए भी उस पात्र-विशेष के प्रति पाठक की श्रद्धा बनी रहे ।

३. देशकाल—देशकाल का निरूपण जीवनी का आवश्यक अथवा अनिवार्य तत्त्व नहीं है; किन्तु श्रद्धेय पात्र की विशिष्टताओं का उद्घाटन करने के लिए जीवनीकार तत्कालीन राजनैतिक-सामाजिक परिस्थितियों का आश्रय भी ले सकता है।

४. भाषा-शैली —जीवनी की भाषा सरल, सुबोध, मुहावरेदार तथा रोचक होनी चाहिए। इसके अभाव में रचना आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक नहीं बन पाती ।

५. उद्देश्य—जीवनी का उद्देश्य श्रद्धेय पात्र के गुणों के प्रति पाठक को आकर्षित करना है, जिससे वह भी उसके गुणों का अनुकरण करने लगे। अतः जीवनीकार को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जीवनी में ग्रहण किए गए श्रद्धेय पात्र का पाठक के मन पर अच्छा प्रभाव पड़े।

जीवनी के प्रकार

प्रतिपाद्य विषय एवं शैली की दृष्टि से जीवनी के अनेक भेद किए जा सकते हैं। प्रतिपाद्य के आधार पर धार्मिक महापुरुषों, ऐतिहासिक वीर पुरुषों, वैज्ञानिकों आदि की विभिन्न प्रकार की जीवनियाँ हो सकती हैं।

शैली की दृष्टि से जीवनी चार प्रकार की होती है—१. आत्मकथा २. संस्मरण ३. दैनंदिनी ४. साक्षात् वार्ता या इन्टरव्यू। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

आत्मकथा

जब कोई व्यक्ति अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तब उसे आत्मकथा कहते हैं। आत्मकथा लिखना बहुत कठिन कार्य है। वस्तुतः अपने चरित्र का स्वयं विश्लेषण करना सरल नहीं है। क्योंकि, यदि लेखक अपने गुणों का वर्णन करता है तो वह आत्म-प्रशंसक कहलाता है; और यदि नहीं करता तो अपनी आत्मकथा का मूल्य घटा देता है। इसी प्रकार यदि वह अपने दोषों का उल्लेख करता है तो यह भय बना रहता है कि दोषों की आत्म-स्वीकृति के फलस्वरूप कहीं श्रद्धालु जनों की श्रद्धा ही न समाप्त हो जाए; और यदि वह अपने दोषों का उल्लेख नहीं करता तो वह सच्चा आत्मकथा-लेखक होने का अधिकारी नहीं है। अतः आत्मकथा के लेखक में सत्यता, निरपेक्ष दृष्टि, चारित्रिक उच्चता आदि का होना बहुत आवश्यक है।

आत्मकथा के तत्त्व

आत्मकथा के तत्त्व वही हैं जो जीवनी के हैं, लेकिन इसकी शैली जीवनी की शैली से भिन्न होती है। यह उत्तम पुरुष की शैली में ही लिखी जाती है।

आत्मकथा के प्रकार

आत्मकथा के दो रूप हो सकते हैं—१. सम्बद्ध रूप में लिखी आत्मकथा २. स्फुट निबन्धों के रूप में लिखी आत्मकथा। जब लेखक अपने जीवन की कहानी इस रूप में लिखता है कि सभी घटनाओं का परस्पर तारतम्य बना रहे तो उसे सम्बद्ध रूप में लिखी आत्मकथा कहते हैं। किन्तु, जब लेखक अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं को लेकर उन पर विभिन्न निबन्ध लिखता है तो वह स्फुट निबन्धों के रूप में लिखी आत्मकथा कहलाती है।

संस्मरण

संस्मरण जीवनी का वह रूप है जिसमें लेखक अपने जीवन की कुछ घटनाओं का इस प्रकार से उल्लेख करता है कि पाठक वर्णित वृत्त की ओर आकर्षित रहता है। आत्मकथा के रूप में संस्मरण लिखना अधिक सरल है। तत्वों की दृष्टि से आत्मकथा के वही तत्त्व हैं जो जीवनी के हैं।

दैनंदिनी या डायरी

दैनंदिनी या डायरी भी साहित्य का नवीन रूप है। आत्मकथा के लेखक के समान डायरी-लेखक भी सर्वप्रिय, सर्वविदित तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए। आत्मकथा की तुलना में डायरी अधिक विश्वासोत्पादक होती है, क्योंकि यह घटना के घटित होने के समय ही लिखी जाती है। इसी कारण इसकी यथार्थता में कोई सन्देह नहीं रहता। इसके तत्त्व भी वही हैं जो आत्मकथा या जीवनी के हैं।

साक्षात् वार्ता या इन्टरव्यू

जब कोई लेखक किसी व्यक्ति के चरित्र का चित्रण करने के लिए उसका साक्षात् दर्शन करता है तथा पारस्परिक विचार-विनिमय के उपरान्त उसकी चारित्रिक विशेषताओं को ज्यों-का-त्यों लिपिबद्ध कर देता है तब उस साहित्यिक विधा को साक्षात् वार्त्ता (Interview) कहते हैं।

भाव नाट्य

भाव-नाट्य हिंदी नाट्य-साहित्य की नवीनतम विधा है। रूसो ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है—"भाव-नाट्य वह आलंकारिक रचना है जिसके साथ संगीत हो।" इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि संगीत भाव-

नाट्य का एक आवश्यक उपकरण है। इसके साथ ही भाव-नाट्य में संवादों की योजना करते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि भावों को मुद्रा तथा अनुभावों के द्वारा व्यक्त किया जा सके। वास्तव में उन्हीं नाटकों को भाव-नाट्य की संज्ञा दी जाती है जिनमें मुद्रा तथा अनुभावों के द्वारा भावों का प्रदर्शन किया जाता है। उदयशंकर भट्ट कृत 'विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य', विष्णु प्रभाकर कृत 'अर्धनारीश्वर' आदि की गणना हिन्दी के सफल भाव-नाट्यों में की जाती है।

गीति-नाट्य

गीति-नाट्य से अभिप्राय उस नाट्य-रचना से है जिसमें कथानक गीतों के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार की रचना के संवाद गीतबद्ध होते हैं। इसकी दो शैलियाँ हैं—(१) मूक अभिनयात्मक, (२) संवादात्मक। मूक अभिनयात्मक गीति-नाट्य में पात्र रंगमंच पर नृत्य द्वारा केवल मूक अभिनय करते हैं तथा संगीत की योजना पर्दे के पीछे से की जाती है। संवादात्मक गीति-नाट्य में पात्र स्वयं गीत गाते हुए अभिनय करते हैं। यद्यपि हिन्दी में गीति-नाट्यों की रचना अधिक नहीं की गई है, किन्तु भगवतीचरण वर्मा कृत 'कर्ण' तथा कविवर पंत कृत 'शिल्पी' आदि की गणना सफल गीति-नाट्यों के रूप में की जास कती है।

नूतन प्रेस, ६५६ गांधी क्लॉथ मार्केट, चाँदनी चौक, दिल्ली

हिन्दी व्याकरण चार्ट

भाषा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रह कर यह आवश्यक है कि वह अपने विचारों और भावों को दूसरों पर प्रकट करे और दूसरों के भावों को स्वयं समझे। विचारों और भावों का आदान-प्रदान सृष्टि के आदि काल से ही मानव करता आया है। अन्य प्राणी भी अपने भावों को किसी-न-किसी प्रकार प्रकट अवश्य करते हैं। परन्तु उसे हम भाषा नहीं कह सकते। चिड़ियों का चहचहाना और पशुओं का तरह-तरह की ध्वनि करना भाषा नहीं है। भाषा तो मनुष्य की ही निजी विशेषता है। यह मनुष्य का ऐसा गुण है, जिसके कारण वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ गिना जाता है। भाषा मनुष्य का अमूल्य धन है। विना भाषा के मनुष्य की स्थिति भी पशु-पक्षी आदि की तरह ही समझनी चाहिए।

आज हम जैसी विकसित भाषा देखते हैं, वैसी सदैव से नहीं रही। सम्भवतः आदि काल के मानव ने इशारों से ही भावों का आदान-प्रदान किया होगा। फिर केवल इशारों से काम नहीं चला और कुछ वस्तुओं के लिए कुछ ध्वनियाँ निश्चित कर ली गईं। वे ध्वनियाँ ही भाषा बन गईं। जो ध्वनियाँ किसी प्रकार के निश्चित भावों को प्रकट नहीं करतीं वे भाषा नहीं कही जा सकतीं। जब ध्वनियाँ सार्थक स्पष्ट और सप्रयोजन होती हैं, तब उसे भाषा कहते हैं।

विकास होते-होते मानव ने अपने विचारों को दूरस्थ व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए और बहुत समय तक सुरक्षित रखने के लिए अपनी प्रयुक्त ध्वनियों के चिह्न निश्चित कर लिये । वही लिखित भाषा कहलाने लगी। संसार विशाल है । नाना देशों के व्यक्तियों ने अपनी-अपनी वस्तुओं के लिए अपनी-अपनी ध्वनियाँ और अपने-अपने ध्वनि-चिह्न निश्चित किये, अतः नाना देशों के व्यक्तियों की भाषाएँ और लिपियाँ भी नाना प्रकार की हो गईं ।

भाषा की परिभाषा:—भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मानव अपने विचारों और भावों को बोलकर अथवा लिखकर दूसरों पर प्रकट करता है ।

विचार प्रकट करने के तीन साधन हो सकते हैं—संकेत द्वारा, बोलकर और लिखकर । इसलिए भाषा तीन प्रकार की होती है —१. सांकेतिक, २. कथित, ३. लिखित ।

१. **सांकेतिक**—जब मनुष्य अपने विचारों को संकेत द्वारा प्रकट करता है, तब उस संकेत करने की क्रिया को सांकेतिक भाषा कहते हैं। शिशु, गूँगे और आवश्यकता पड़ने पर बालचर भी इसका प्रयोग करते हैं।

२. **कथित**—जब मनुष्य अपने विचारों को बोलकर व्यक्त करता है, तब उस क्रिया को कथित भाषा कहते हैं । आज्ञा देना, वार्तालाप करना और व्याख्यान देना कथित भाषा के उदाहरण हैं ।

३. **लिखित**—जब मनुष्य अपने विचारों को लिखकर प्रकट करता है, तब उस भाषा को लिखित भाषा कहते हैं । पत्र-व्यवहार, पुस्तक लिखने आदि में इसका प्रयोग किया जाता है ।

भाषा और बोली :—भाषा और बोली एक तरह समानार्थक-सी लगती हैं, परन्तु दोनों में अन्तर है । संस्कृत की 'भाष्' धातु से 'भाषा' शब्द बना है । 'भाष्' धातु का अर्थ होता है—कहना या बोलना । फिर भी कहने

श्रीर बोलने में सूक्ष्म श्रन्तर है। 'कहना' का प्रयोग तो किसी भाषा के लिए कर सकते हैं, पर बोलना किसी भी बोली के लिए प्रयोग में ला सकते हैं। वास्तव में पशु, पक्षी श्रादि कहते नहीं हैं, बोलते हैं। मनुष्य कहते हैं। मनुष्यों का कहना भाषा है, पक्षियों का बोलना बोली है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि मनुष्य की सार्थक बोली भाषा है, बाकी प्राणियों की ध्वनियाँ बोलियाँ हैं।

व्याकरण

परिभाषा—जिस विद्या के द्वारा किसी भाषा को शुद्ध बोलना, समझना तथा लिखना श्रा जाए, उसे 'व्याकरण' कहते हैं।

व्याकरण के विभाग—भाषा के श्रन्तर्गत वर्ण, शब्द श्रौर वाक्य होते हैं। व्याकरण द्वारा भाषा के इन तीनों श्रंगो की विवेचना की जाती है। इस प्रकार व्याकरण के तीन विभाग हुए—१. वर्ण-विचार, २. शब्द-विचार, ३. वाक्य-विचार।

नोटः—इनके श्रतिरिक्त छन्द-विभाग एक चौथा विभाग है, जिसे जानना छोटी कक्षाश्रों के छात्रों के लिए इतना श्रावश्यक नहीं है।

(अ) वर्ण-विचार—व्याकरण के जिस श्रंग में वर्णों के भेद, उच्चारण-स्थान, प्रयत्न श्रादि का विवेचन होता है, उसे 'वर्ण-विचार' कहते हैं।

(श्रा) शब्द-विचार—जिस स्थान पर शब्दों की व्युत्पत्ति, बनावट, भेद श्रादि का विवेचन होता है, वह व्याकरण में 'शब्द-विचार' कहलाता है।

(इ) **वाक्य-विचार**—व्याकरण के जिस प्रकरण में वाक्यों के भेद, विराम-चिह्नों आदि का वर्णन होता है, वह 'वाक्य-विचार' कहलाता है।

वर्ण-विचार

परिभाषा—वह छोटी-से-छोटी सार्थक ध्वनि, जिसके टुकड़े न हो सकें, 'वर्ण' कहलाती है। वर्ण को अक्षर भी कहते हैं, जिसका तात्पर्य है वह ध्वनि जिसका नाश न हो (अ+क्षर)। हिन्दी-भाषा जिस लिपि में लिखी जाती है, उसे नागरी या देवनागरी लिपि कहते हैं। इसके वर्णों के समूह को 'वर्णमाला' कहते हैं।

वर्णों के प्रकार

वर्णों के दो प्रकार हैं—१. स्वर, २. व्यञ्जन।

स्वर—जिन वर्णों का उच्चारण विना किसी अन्य वर्ण की सहायता के होता है, वे 'स्वर' कहलाते हैं—जैसे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ आदि।

व्यञ्जन—जिन वर्णों का उच्चारण विना स्वरों की सहायता के नहीं होता, वे 'व्यञ्जन' कहलाते हैं। जैसे—क्, च्, ट्, त्, प् आदि।

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ=११

व्यञ्जन—क ख ग घ ङ त थ द ध न
च छ ज झ ञ प फ ब भ म

ट ठ ड ढ ण

ष स ह

य र ल व श

कुल संख्या = ३३

स्वरों का कई प्रकार से विभाजन किया जाता है। मुख्यतः चार दृष्टियों से स्वरों को वर्गीकृत करते हैं—१. रचना के विचार से, २. जाति के विचार से, ३. उच्चारण के विचार से, ४. मात्रा के विचार से।

रचना के विचार से स्वरों के भेद

रचना के विचार से स्वर दो प्रकार के होते हैं—१. मूल स्वर, २. सन्धि स्वर।

(अ) मूल स्वर—जिन स्वरों की रचना बिना किसी अन्य स्वर की सहायता के होती है, उन्हें **मूल स्वर** कहते हैं। अ इ उ ऋ की रचना में किसी अन्य स्वर की सहायता नहीं ली जाती, अतः ये मूल स्वर हैं।

(आ) सन्धि स्वर—दो मूल स्वरों की सन्धि (मेल) करके जो स्वर बनते हैं, उन्हें 'सन्धि-स्वर' कहते हैं आ ई ऊ ए ऐ ओ औ ये दो-दो मूल स्वरों की सन्धि से बने हैं, अतः ये 'सन्धि-स्वर' हैं। इन सन्धि-स्वरों की रचना नीचे दी जाती है—

अ + अ = आ

इ + इ = ई

उ + उ = ऊ

अ + ई = ए

अ + ए = ऐ

अ + उ = ओ

अ + ओ = औ

जाति के विचार से स्वरों के भेद

जाति के विचार से स्वरों के दो भेद होते हैं—१. सवर्ण स्वर, २. असवर्ण स्वर।

१. **सवर्ण स्वर**— जो स्वर एक-सी जाति के होते हैं, उन्हें 'सवर्ण स्वर' कहते हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, एक जाति के हैं, अतः ये सवर्ण स्वर हैं।

२. **असवर्ण स्वर**—जो स्वर अपनी जाति के स्वरों से न बनकर दूसरे स्वरों (विजातीय) के संयोग से, बनते हैं, उन्हें 'असवर्ण स्वर' कहते हैं। ए, ऐ, ओ, औ असवर्ण स्वर हैं, क्योंकि ये क्रमशः अ+इ अ+ए, अ+उ, और अ+ओ के संयोग से बनते हैं।

उच्चारण के विचार से स्वरों के भेद

उच्चारण के विचार से स्वरों के दो भेद होते है—१. अनुनासिक, २. निरनुनासिक।

१. **अनुनासिक**—जहाँ स्वरों का उच्चारण करने में मुख के साथ नासिका का भी प्रयोग होता है, वहाँ वे स्वर, 'अनुनासिक' कहलाते हैं। दाँत, हँस, वहाँ, में आ, अ और आ का उच्चारण **आँ**, **अँ और** आँ होता है, अतः यहाँ ये स्वर अनुनासिक हैं।

२. **निरनुनासिक**—जहाँ स्वरों का उच्चारण मुख के द्वारा ही होता है, वहाँ वे स्वर 'निरनुनासिक' कहलाते हैं। सूरज, **राम**, **नाम** में ऊ, आ, और आ का उच्चारण करने में नासिका की सहायता न लेकर केवल मुख से उच्चारण किया जाता है। अतः ये स्वर यहाँ निरनुनासिक हैं।

मात्रा के विचार से स्वरों के भेद

मात्रा के विचार से स्वरों के तीन भेद होते हैं—१. ह्रस्व, २. दीर्घ, ३. प्लुत।

ह्रस्व स्वर—जिन स्वरों का उच्चारण करने में थोड़ा-सा समय लगता है, उन्हें ह्रस्व स्वर कहते हैं। ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जो समय लगता है, उसकी एक मात्रा होती है। अ, इ, उ, ऋ ह्रस्व स्वर हैं।

दीर्घ स्वर—जिन स्वरों का उच्चारण करने में ह्रस्व स्वर से दुगुना समय लगता है, उन्हें दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ स्वर के उच्चारण में जो समय लगता है, उसकी दो मात्राएँ होती हैं। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ दीर्घ स्वर हैं।

प्लुत स्वर—जिन स्वरों का उच्चारण करने में ह्रस्व स्वर से तिगुना समय लगता है, वे प्लुत स्वर कहलाते हैं। हिन्दी में प्रायः दूर से बुलाने के लिये प्लुत स्वर का प्रयोग करते हैं। जैसे—रा३म्, आओ३। प्लुत स्वर के आगे ३ का चिह्न लगा देते हैं। वेदों में प्लुत स्वरों का प्रयोग होता है। जैसे—ओ३म्।

व्यञ्जन

जिन वर्णों का उच्चारण स्वरों की सहायता से होता है, उन्हें 'व्यञ्जन' कहते हैं। क से लेकर ह तक के सभी वर्ण व्यञ्जन हैं। इनकी संख्य ३३ है।

व्यञ्जनों के प्रकार

मुख्य रूप से व्यञ्जनों के तीन प्रकार होते हैं—१. स्पर्श, २. अन्तस्थ, ३. ऊष्म।

(अ) **स्पर्श**—जिन व्यञ्जनों का उच्चारण करते समय जिह्वा मुख के किसी-न-किसी भाग को स्पर्श करती है, वे 'स्पर्श' कहलाते हैं। इनकी संख्या २५ है। इनके पाँच वर्ग हैं और प्रत्येक वर्ग में पांच-पांच व्यञ्जन हैं। प्रत्येक वर्ग का नाम उसी वर्ग के प्रथम अक्षर के अनुसार लिया जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित तालिका देखिए—

वर्ग संख्या	वर्ग का नाम	वर्ग के अक्षर				
१.	कवर्ग	क	ख	ग	घ	ङ
२.	चवर्ग	च	छ	ज	झ	ञ
३.	टवर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण
४.	तवर्ग	त	थ	द	ध	न
५.	पवर्ग	प	फ	ब	भ	म

(आ) **अन्तस्थ**—जिन व्यञ्जनों का उच्चारण करते समय जिह्वा मुख के किसी-न-किसी भाग को थोड़ा-सा स्पर्श करती है, वे 'अन्तस्थ' कहलाते हैं। ये स्पर्श और ऊष्म के मध्य (अन्तम्) में स्थित (स्थ) रहते हैं। ये संख्या में चार हैं—य र ल व। अन्तस्थ व्यञ्जनों को 'यण्' भी कहते हैं।

(इ) **ऊष्म**—जिन व्यञ्जनों का उच्चारण करते समय मुख में श्वास रगड़ खाकर बाहर निकलती है और कुछ गर्मी (ऊष्मा) सी पैदा हो जाती है, उन्हें 'ऊष्म' कहते हैं। श ष स ह व्यञ्जन ऊष्म हैं। ऊष्म को 'शल्' भी कहते है।

संयुक्ताक्षर

कभी-कभी दो व्यञ्जन मिलकर एक अक्षर बन जाते हैं। ऐसे मिले हुए अक्षरों को संयुक्ताक्षर कहते हैं। प्राय: संयुक्ताक्षरों में दोनों अक्षरों का रूप अलग-अलग दिखलाई देता रहता है। पर संयुक्ताक्षरों के तीन जोड़े इस प्रकार मिल गये हैं कि वे एक अक्षर जैसे ही प्रतीत होते हैं और सामान्यत: संयुक्ताक्षर कहने से इन्हीं तीनों का बोध होता है। वे ये हैं—

क्+ष्=क्ष, त्+र्=त्र, ज्+ञ्=ज्ञ।

इसके अलावा जब स्वररहित दो व्यञ्जन आपस में मिल जाते हैं तो उन्हें संयुक्त व्यंजन कहते हैं। इन्हीं को कुछ लोग संयुक्ताक्षर भी कहते हैं। उदाहरण के लिए—

प्+य=प्य, स्+र=स्र, श्+च=श्च।

संयुक्त व्यंजनों का मेल करते समय कुछ ध्यान देने योग्य बातें ये हैं—

१. कुछ व्यंजन खड़ी पाई वाले होते हैं और कुछ विना पाई वाले। खड़ी पाई वाले व्यंजन को मिलाते। समय उसकी पाई हटा दी जाती है। जैसे ग्+य=ग्य च्+य=च्य।

२. विना पाई वाले व्यंजनों को मिलाते समय या तो अगले व्यंजन को पहले के नीचे जोड़ते है या हलन्त का चिह्न लगा देते हैं। जैसे—

(i) ङ्+क = ङ्क = रङ्क, ह्+ल = ह्ल = प्रह्लाद।

(ii) ड्+ढ = ड्‌ढ = गड्‌ढा,

ङ्+म = ङ्‌म = वाङ्‌मय।

नोट—जब दो सजातीय व्यंजन मिलते हैं तो उन्हें 'द्वित्वाक्षर' कहते हैं। जैसे—द्+द=द्द, त्+त=त्त

क्+क् = क्क।

(३) र यदि पाई वाले व्यंजन के बाद में आता है तो उस व्यंजन का रूप ग्र, स्र, म्र, आदि हो जाता है और यदि र किसी भी व्यंजन के पहले आता है तो उसी व्यंजन पर (र्) इस रूप में चिह्न लगाया जाता है। जैसे—कर्म, कार्य, और्ध्व आदि।

(४) यदि पहले बिना पाई वाला व्यंजन हो और बाद में पाई वाले व्यंजन के साथ उसे मिलाया जाय तो बिना पाई वाले व्यंजन को आधा लिखते हैं। जैसे—ट्या, ड्य, ह्म इत्यादि।

(५) जिस क्रम से वर्णों को संयुक्त किया जाता है उसी क्रम से जोड़ कर उनको लिखा जाता है। उदाहरणार्थ—

क्+ल = क्ल, ज्+व्+आ+ल्+आ = ज्वाला

अ+ध्+य्+आ+प्+अ+क्+अ = अध्यापक

ब्+र्+आ+ह्+म+ण्+अ = ब्राह्मण

अ+न्+उ+स्+अ+न्+ध्+आ+न = अनुसंधान।

अनुस्वार

(ं) बिन्दु के चिन्ह को 'अनुस्वार' कहते हैं। इसका उच्चारण नासिका से होता है। उच्चारण के समय नासिका द्वारा ही सांस निकलती है। इसका उच्चारण तीव्र होता है। जैसे—कंस, रंग, हंस आदि।

अनुनासिक

अनुनासिक का उच्चारण मुख और नासिका, दोनों की सहायता से होता है। उच्चारण के समय श्वास मुख और नासिका दोनों से निकलती है। इसका उच्चारण कोमल होता है। अनुनासिक लिखते समय (ँ) चन्द्रबिन्दु का प्रयोग किया जाता है। जैसे—विहँस, चाँद आदि।

विसर्ग

किसी अक्षर के आगे जब दो बिन्दी (:) लगा देते हैं तो वे विसर्ग कहलाते हैं। इसका उच्चारण ह की तरह का होता है। जैसे मोहनः (मोहनह्), रामः (रामह्) आदि। विसर्गों का प्रयोग संस्कृत में बहुत होता है।

नोट—अनुस्वार, अनुनासिक और विसर्ग को 'अयोगवाह' भी कहते हैं। इनको विद्वान् व्यंजन ही मानते हैं।

हलन्त

वर्ण के नीचे जब (्) ऐसा चिह्न लगा दिया जाता है तो उसे 'हलन्त' कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उस वर्ण के अन्त में स्वर नहीं है। वह अंत में व्यंजन ही रखने वाला है। व्यंजनों को संस्कृत में 'हल्' कहते हैं और स्वरों को 'अच्'। हलन्त को भ्रमवश प्रायः गलत समझा जाता है। (्)ऐसे चिह्न को ही हलन्त समझना अशुद्ध है। हलन्त=हल्+अन्त, अर्थात् हल् (व्यंजन) है अन्त में जिसके। क्, त्, न् ये सब हलन्त हैं।

वर्णों के उच्चारण स्थान

मुख के जिस भाग से कोई वर्ण उच्चरित होता है, वह उसका उच्चारण-स्थान कहलाता है। उच्चारण स्थान और वहाँ से उच्चरित होने वाले वर्ण इस प्रकार हैं—

	उच्चारण-स्थान	नाम	वर्ण
१.	कण्ठ	कण्ठ्य	अ आ कवर्ग ह विसर्ग
२.	तालु	तालव्य	इ ई चवर्ग य श
३.	मूर्धा	मूर्द्धन्य	ऋ टवर्ग र ष
४.	दन्त	दन्त्य	लृ तवर्ग ल स
५.	ओष्ठ	ओष्ठ्य	उ ऊ पवर्ग
६.	कण्ठ तालु	कण्ठ तालव्य	ए ऐ
७.	कण्ठ-ओष्ठ	कण्ठ-ओष्ठ्य	ओ औ
८.	दन्तोष्ठ	दन्तोष्ठ्य	व
९.	नासिका	अनुनासिक	ङ ञ ण न म

प्रयत्न

वर्णों का उच्चारण करते समय जो यत्न किया जाता है, उसे प्रयत्न या 'यत्न' कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—आभ्यंतर और वाह्य।

(अ) आभ्यन्तर प्रयत्न—वर्णों का उच्चारण करने से पहले जो प्रयत्न होता है, उसे 'आभ्यन्तर प्रयत्न' कहते हैं। इसके पांच प्रकार हैं—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत।

आभ्यंतर-प्रयत्न-चित्र

स्पृष्ट					ईषत्स्पृष्ट	विवृत		ईषद्विवृत	संवृत
क	च	ट	त	प	य	अ	ए	श	ह्रस्व 'अ'
ख	छ	ठ	थ	फ	र	इ	ओ	ष	
ग	ज	ड	द	ब	ल	उ	ऐ	स	
घ	झ	ढ	ध	भ	व	ऋ	औ	ह	
ङ	ञ	ण	न	म		लृ			

(आ) बाह्य प्रयत्न—उच्चारण के पश्चात् मुख से वायु निकलते समय के प्रयत्न को बाह्य प्रयत्न कहते हैं। यह प्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

बाह्य-प्रयत्न-चित्र

विवार, श्वास अघोष	संवार नाद घोष	अल्पप्राण	महाप्राण	उदात्त, अनुदात्त स्वरित
	ग घ ङ	क ग ङ	ख घ	'अ' आदि स्वर
ख फ छ ठ थ	ज झ ञ	च ज ञ	छ झ	
च ट त क प	ड ढ ण	ट ड ण	ठ ढ	
श ष स	द ध न	त द न	थ ध	
	ब भ म	प ब म	फ भ	
	य व र ल	य व र ल	श ष स ह	

शब्द

शब्द—दो या दो से अधिक वर्णों के समूह को शब्द कहते हैं। जैसे—आज, कल आदि। शब्दों के दो प्रकार हैं—सार्थक शब्द और निरर्थक शब्द ।

सार्थक शब्द—जिन शब्दों का कोई न कोई अर्थ निकलता हो, उन्हें सार्थक शब्द कहते हैं। जैसे—राम, पुस्तक, पानी आदि ।

निरर्थक शब्द—जिन शब्दों का कोई अर्थ नहीं निकलता, उन्हें निरर्थक शब्द कहते हैं । जैसे –'चाकू-वाकू' में 'वाकू' शब्द निरर्थक है । केवल ध्वनि-मात्र 'चीं चीं', 'पी पी' आदि भी निरर्थक शब्द ही हैं ।

उत्पत्ति की दृष्टि से शब्दों के प्रकार

उत्पत्ति की दृष्टि से शब्दों के चार प्रकार हैं – तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी ।

तत्सम—जो शब्द संस्कृत भाषा के होते हैं और हिन्दी में वैसे के वैसे प्रयोग में लाये जाते हैं, वे **तत्सम शब्द** कहलाते हैं । जैसे—पुस्तक, फल, जल, नर आदि ।

तद्भव—जो शब्द संस्कृत के रूप को छोड़कर हिन्दी में कुछ बिगड़े हुए रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें **तद्भव शब्द** कहते हैं । जैसे—हस्त से हाथ, दुग्ध से दूध, अक्षि से आँख आदि ।

देशज—जो शब्द जनता द्वारा अपने किसी क्षेत्र-विशेष में गढ़ लिये जाते हैं, उन्हें देशज कहते हैं । जैसे—खाट, गाड़ी, लुटिया आदि ।

विदेशी—जो शब्द किसी दूसरी भाषा के होते हैं और हिन्दी में वैसे ही प्रयुक्त होते हैं, उन्हें **विदेशी शब्द** कहते हैं । जैसे—स्टेशन, लालटेन, कालिज इत्यादि ।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्दों के भेद

व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्दों के तीन भेद हैं—रूढ़ि, यौगिक और योगरूढ़ि ।

रूढ़ि—जिन शब्दों के खंड नहीं होते तथा जो अपने किसी रूढ़िगत अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें 'रूढ़ि' शब्द कहते हैं । जैसे—राम, रात, दिन आदि ।

यौगिक—जो शब्द दो या दो से अधिक शब्दों के योग से बनते हैं, उन्हें 'यौगिक' कहते हैं। जैसे—विद्यालय=विद्या+आलय।

योगरूढ़ि—कुछ यौगिक शब्दों का कोई विशेष अर्थ होता है। भेद करने पर कुछ और अर्थ होता है तथा उनका योग करने पर कुछ और अर्थ होता है, वे 'योगरूढ़ि' शब्द कहलाते हैं। जैसे—जलज=जल+ज, षडानन=षट्+आनन।

रूपान्तर की दृष्टि से शब्दों के भेद

रूपान्तर की दृष्टि से शब्दों के दो भेद हैं—विकारी और अविकारी।

विकारी शब्द—जिन शब्दों का प्रयोग करते समय रूप बदल जाता है, उन्हें विकारी शब्द कहते हैं। इनमें लिंग, वचन और पुरुष आदि के कारण विकार आता है। जैसे—अच्छा, अच्छी, अच्छे।

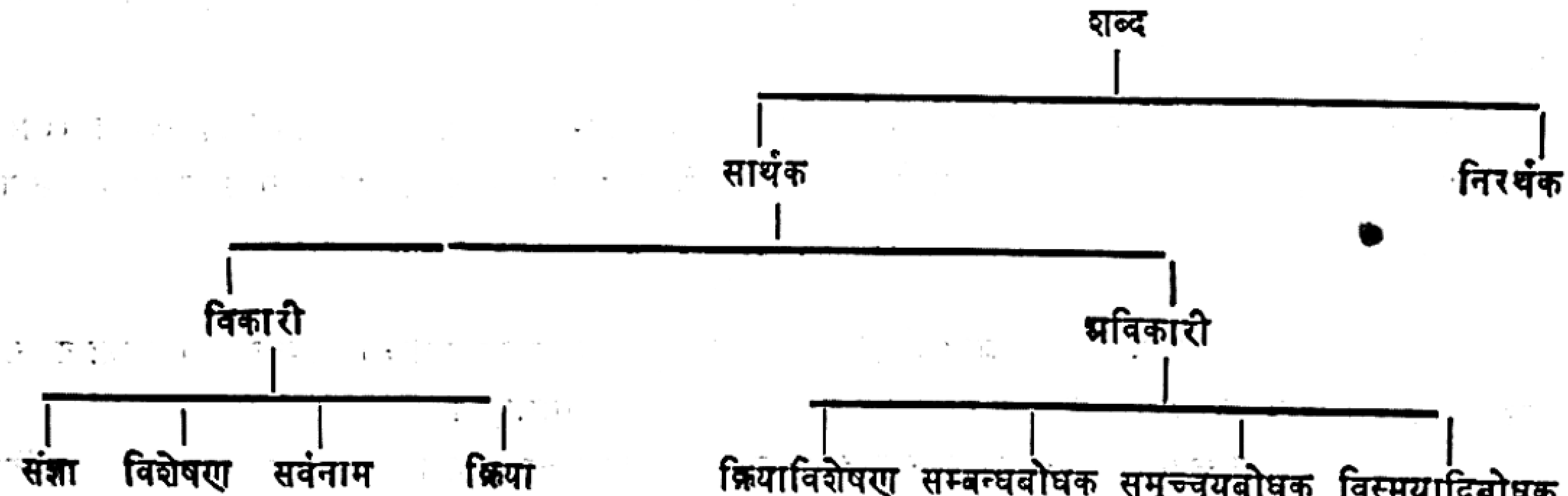
अविकारी शब्द—जिन शब्दों के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता, उन्हें अविकारी शब्द कहते हैं। जैसे—आज, अब, और आदि।

विकारी शब्दों के भेद

विकारी शब्दों के चार भेद हैं—संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम और क्रिया।

अविकारी शब्दों के भेद

अविकारी शब्दों के चार भेद हैं—क्रिया-विशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक।



संज्ञा

किसी वस्तु, स्थान अथवा व्यक्ति के नाम को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा के तीन भेद हैं—व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, और भाववाचक।

व्यक्तिवाचक—किसी विशेष व्यक्ति अथवा स्थान का बोध कराने वाली संज्ञा को व्यक्तिवाचक कहते हैं। जैसे—सूरज, शान्ति, दिल्ली आदि।

जातिवाचक—जो संज्ञा किसी जाति का बोध कराती है, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे—पुरुष, पशु, स्त्री आदि।

भाववाचक—जिससे किसी पदार्थ का गुण, अवस्था, व्यापार आदि जाना जाय, वह भाववाचक संज्ञा कहलाती है। जैसे—बचपन, यौवन, वीरता आदि।

संकेत—अंग्रेजी भाषा में संज्ञा के दो भेद और हैं। उन्हें हिन्दी में समुदायवाचक (Collective Noun) और द्रव्यवाचक (Material Noun) कहते हैं। जैसे—'सेना' व 'कक्षा' समुदायवाचक हैं तथा 'लोहा' व 'सोना' द्रव्यवाचक।

लिङ्ग

शब्द के जिस रूप से यह ज्ञान होता हो कि वह पुरुष जाति का बोधक है अथवा स्त्री जाति का उसे 'लिङ्ग' कहते हैं। हिन्दी-भाषा में लिङ्गों के दो प्रकार हैं—पुल्लिग और स्त्रीलिङ्ग।

पुल्लिग—जिससे पुरुष जाति का बोध होता है वह पुल्लिङ्ग कहलाता है। जैसे—राम, लड़का, शेर आदि।

स्त्रीलिङ्ग—जिससे स्त्री जाति का बोध होता हो वह स्त्रीलिङ्ग कहलाता है। जैसे—बकरी, बुढ़िया, नारी आदि।

वचन

शब्द के जिस रूप से उसकी संख्या का पता चले कि वह एक के लिए प्रयुक्त हुआ है या एक से अधिक के लिए, उसे 'वचन' कहते हैं। हिन्दी में वचनों के दो प्रकार हैं—एकवचन और बहुवचन।

एकवचन—जो शब्द केवल एक की संख्या को प्रकट करता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे—मोहन, पुस्तक आदि।

बहुवचन—शब्द के जिस रूप से बहुत-सी संख्याओं का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे—स्त्रियाँ पुस्तकें, गायें आदि।

कारक

संज्ञा अथवा सर्वनाम के उस रूप को जिसके द्वारा उसका वाक्य के अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध ज्ञात होता हो, कारक कहते हैं। कारक के आठ भेद हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन।

कर्त्ता—संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के करने वाले का ज्ञान होता है, उसे कर्त्ता कहते हैं। अर्थात् काम के करने वाले को कर्त्ता कहते हैं। जैसे—"राम ने एक साँप मारा"। इस वाक्य में राम कर्त्ता है। कर्त्ता का चिह्न 'ने' है।

कर्म—जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे कर्म कहते हैं। जैसे—"मैंने राम को देखा।" इस वाक्य में 'राम' कर्म है। इसका चिह्न 'को' है।

करण—जिसके द्वारा कर्त्ता अपना कार्य करता है, उसे करण कहते हैं। करण कर्त्ता के साधन-वस्तु को बतलाता है। जैसे—"राम ने बाण के द्वारा रावण को मारा।" इसका चिह्न 'से' या 'द्वारा' है।

सम्प्रदान—कर्त्ता जिसके लिए काम करता है, संज्ञा का वह रूप सम्प्रदान कारक होता है। जैसे—"उसने बच्चों के लिए मिठाई दी।" इसका चिह्न 'के लिए' है।

अपादान—जहाँ एक वस्तु का दूसरी से पृथक् होना पाया जाए वहाँ अपादान कारक होता है। जैसे—"वृक्ष से पत्ते गिरते हैं।" अपादान का चिह्न 'से' (अलग होने के अर्थ में) है।

सम्बन्ध—जहाँ एक वस्तु का दूसरी के साथ सम्बन्ध प्रकट होता है, वहाँ सम्बन्ध कारक होता है। जैसे—"यह बलराम की पिस्तौल है।" सम्बन्ध कारक का चिह्न 'का', 'के' अथवा 'की' होता है।

अधिकरण—जिस स्थान पर कर्त्ता अपनी क्रिया करता है, वह अधिकरण कारक को प्रकट करता है। जैसे—"कुएँ में पानी है।" इसका चिह्न 'में', 'पर' आदि होता है।

सम्बोधन—जहाँ किसी को पुकारा जाय या सम्बोधित किया जाय, वहाँ सम्बोधन होता है। जैसे—"अरे! प्रभात इधर आओ।" सम्बोधन का चिह्न 'हे!', 'रे!', 'अरे!' आदि होता है।

कारक और उनके चिह्न

	कारक	चिह्न		कारक	चिह्न
१.	कर्त्ता	ने	५.	अपादान	से (अलग होने में)
२.	कर्म	को	६.	सम्बन्ध	का, के, की
३.	करण	से (द्वारा)	७.	अधिकरण	में, पै, पर
४.	सम्प्रदान	के लिए	८.	सम्बोधन	हे !, रे !, अरे !

संज्ञा के रूप—"राम"

कारक	एकवचन	बहुवचन
१. कर्त्ता	राम, राम ने	रामों ने
२. कर्म	राम को	रामों को
३. करण	राम से, राम के द्वारा	रामों से, रामों के द्वारा
४. सम्प्रदान	राम के लिए	रामों के लिए
५. अपादान	राम से	रामों से
६. सम्बन्ध	राम का, की, के	रामों का, की, के
७. अधिकरण	राम में	रामों में
८. सम्बोधन	हे राम !	हे रामो !

विशेषण

संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता प्रकट करने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। जैसे—"सुन्दर लड़का।" इसमें 'सुन्दर' विशेषण है। विशेषण के चार भेद हैं—गुणवाचक, परिमाणवाचक, संख्यावाचक और निर्देशक या सार्वनामिक अथवा सांकेतिक।

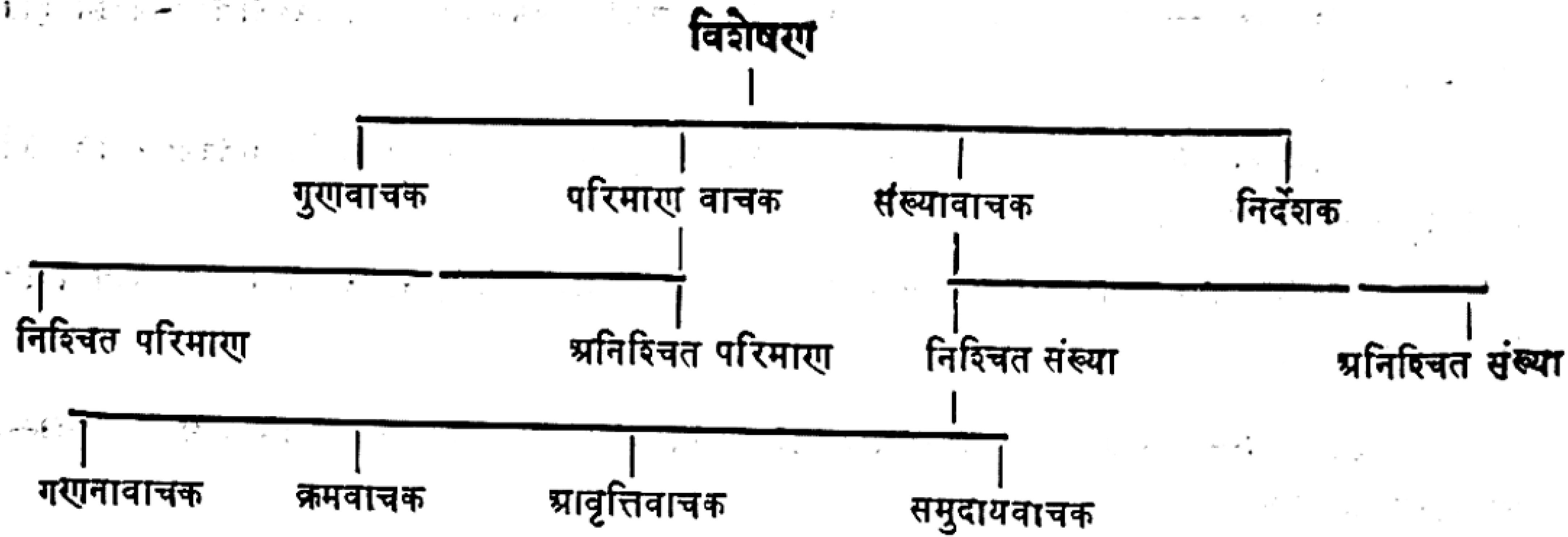
गुणवाचक—जो शब्द किसी के गुण, दोष, रंग आदि को प्रकट कर, वे गुणवाचक विशेषण होते हैं। जैसे–"काला कुत्ता।"

परिमाणवाचक—जो शब्द किसी वस्तु के परिमाण (नाप-तौल) का ज्ञान करायें, उन्हें परिमाणवाचक कहते हैं। जैसे—दो सेर, तीन पाव आदि। इसके दो भेद और हैं—निश्चित और अनिश्चित। 'एक सेर' निश्चित परिमाण है। 'बहुत दूध' अनिश्चित परिमाण है।

संख्यावाचक—जिन विशेषणों से किसी की संख्या ज्ञात हो, वे संख्यावाचक विशेषण होते हैं। जैसे—चार फल।

निश्चित और अनिश्चित संख्या के अनुसार इसके दो उपभेद होते हैं। 'पहला', 'दूसरा' आदि शब्द निश्चित संख्या के और 'कुछ' जैसे शब्द अनिश्चित संख्या के वाचक हैं। निश्चित संख्या के चार भेद और हैं—गणना, क्रम, आवृत्ति, समुदाय।

निर्देशक—जिन विशेषणों से संज्ञा की ओर निर्देश हो, उन्हें निर्देशक विशेषण कहते हैं। जैसे—"यह मोर है।"



सर्वनाम

जो शब्द संज्ञा के स्थान में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें सर्वनाम कहते हैं। जैसे—तू, वह, मैं आदि।

सर्वनाम के पांच भेद हैं—पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, सम्बन्धवाचक और प्रश्नवाचक।

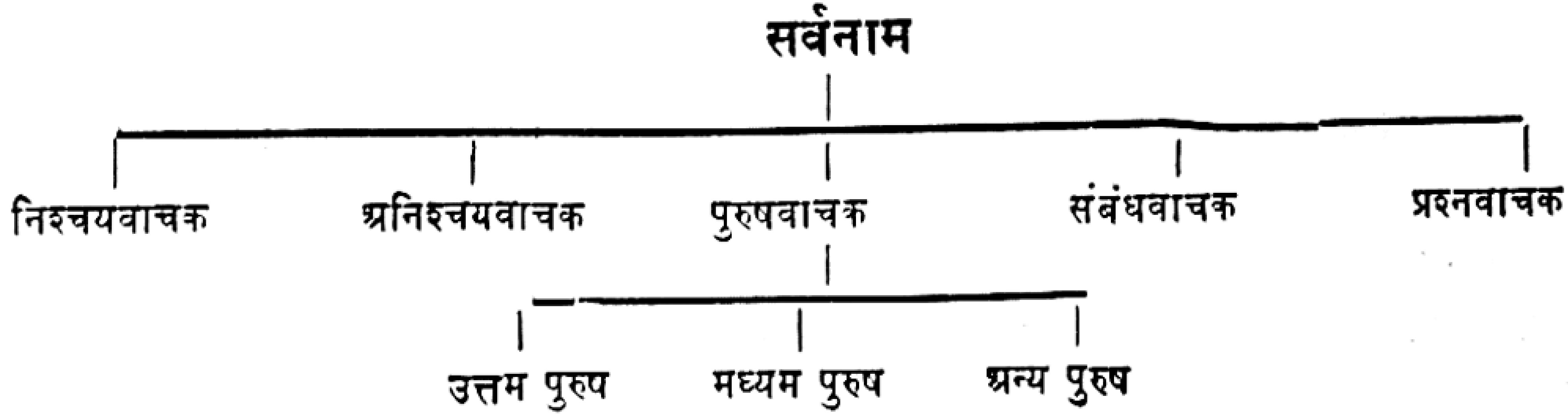
पुरुषवाचक—जिस सर्वनाम से कहने वाले, सुनने वाले अथवा किसी तीसरे व्यक्ति का बोध हो, वह पुरुषवाचक सर्वनाम होता है। जैसे—मैं, तुम, वे आदि। पुरुषवाचक सर्वनाम के तीन भेद हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष।

निश्चयवाचक—जिन सर्वनामों से किसी वस्तु आदि का निश्चय हो, वे निश्चयवाचक सर्वनाम होते हैं। जैसे—यह, वह।

अनिश्चयवाचक—जिन सर्वनामों से किसी निश्चित वस्तु आदि का ज्ञान न हो, वे अनिश्चयवाचक सर्वनाम होते हैं। जैसे—कोई, कुछ।

सम्बन्धवाचक—सम्बन्धवाचक सर्वनाम वे सर्वनाम हैं जो शब्दों का एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध बताते हैं। जैसे—जो, सो आदि।

प्रश्नवाचक—जिस सर्वनाम द्वारा प्रश्न का बोध होता हो, वह प्रश्नवाचक सर्वनाम होता है। जैसे—कौन, किस, किससे आदि।



क्रिया

जिस शब्द के द्वारा किसी कार्य का करना या होना पाया जाय, उसे क्रिया कहते हैं। जैसे—"सीता गाना गाती है।" इसमें 'गाती है' से गाने के कार्य का बोध होता है, अतः 'गाती है' क्रिया है।

क्रिया के मुख्यतः दो भेद हैं—सकर्मक और अकर्मक।

सकर्मक—जिस वाक्य में क्रिया के व्यापार का फल कर्म पर पड़ता है, उसे 'सकर्मक क्रिया' कहते हैं। जैसे—"सीता खाना बनाती है।" इस वाक्य में बनाने के व्यापार का फल 'खाना' पर पड़ता है। अतः यह सकर्मक क्रिया है। सकर्मक क्रिया में कर्म अवश्य होता है।

अकर्मक—जहाँ कर्त्ता के व्यापार का फल कर्त्ता पर ही पड़ता है, वहाँ 'अकर्मक क्रिया' होती है। जैसे—"वह सोता है", "राम पढ़ता है" आदि वाक्यों की क्रियाएँ अकर्मक हैं। इनमें क्या सोता है? क्या पढ़ता है? आदि प्रश्नों के उत्तर में कोई कर्म नहीं आता।

क्रिया-सम्बन्धी अन्य ज्ञातव्य भेद

धातु—क्रिया के मूल रूप को 'धातु' कहते हैं। जैसे—पढ़ना, चलना आदि में 'पढ़', 'चल' धातु हैं।

प्रेरणार्थक क्रिया—जहाँ कर्त्ता दूसरे से काम करवाये वहाँ प्रेरणार्थक क्रिया होती है। जैसे—"सीता शान्ति से कपड़े धुलवाती है।" यहाँ सीता स्वतः नहीं धोती, धुलवाती है; अतः प्रेरणार्थक क्रिया है।

द्विकर्मक क्रिया—जब किसी सकर्मक क्रिया का कर्त्ता किसी और से कार्य करवाता है तो द्विकर्मक क्रिया होती है। जैसे—"राम श्याम को खाना खिलाता है।" इसमें 'श्याम' और 'खाना' दो कर्म हैं—अतः द्विकर्मक क्रिया है।

अपूर्ण क्रिया—जहाँ वाक्य का अर्थ तब तक स्पष्ट न हो जब तक कोई और शब्द न लाया जाय, वहाँ अपूर्ण क्रिया होती है। जैसे—"वह है।" इसमें जब तक यह न कहा जाय कि वह अच्छा, बुरा, सुन्दर आदि क्या है, तब तक अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

पूरक—अपूर्ण क्रिया को पूरा करने के लिये जो शब्द आता है, उसे 'पूरक' कहते हैं। जैसे—"उन्होंने उसे (राजा) बनाया।" यहाँ पर 'राजा' शब्द पूरक है।

नाम धातु—जो क्रियाएँ धातुओं को छोड़कर अन्य शब्दों से बनती हैं, उन्हें 'नाम धातु' कहते हैं। जैसे—"मक्खी भिनभिनाती है।" यहाँ 'भिनभिन' शब्द से 'भिनभिनाती' क्रिया बना ली गई है।

संयुक्त क्रिया—जहाँ दो या दो से अधिक धातुएँ मिलकर कोई क्रिया बनती है, वहाँ संयुक्त क्रिया होती है। जैसे—"वह खाना खा चुका।" यहाँ 'खाना' और 'चुकना' दो क्रियाओं की दो धातुएँ एक साथ आई हैं। अतः यहाँ संयुक्त क्रिया है। संयुक्त क्रिया के नौ भेद होते हैं—आरम्भबोधक, समाप्तिबोधक, शक्तिबोधक, विवशताबोधक, इच्छाबोधक, नित्यताबोधक, तत्कालबोधक, सातत्यबोधक, अवकाशबोधक।

काल

प्रत्येक क्रिया किसी न किसी समय में होती है। उस समय को क्रिया का काल कहते हैं। काल के तीन प्रकार हैं—भूत काल, वर्तमान काल और भविष्यत् काल।

भूत काल—जो कार्य बीते हुए समय का हो, उसे भूत काल कहते हैं। जैसे—मैंने पढ़ा, वह गया आदि।

भूत काल के भेद—भूत काल के छः भेद हैं—सामान्य भूत, आसन्न भूत, पूर्ण भूत, अपूर्ण भूत, संदिग्ध भूत और हेतुहेतुमद्‌भूत ।

सामान्य भूत—जिस क्रिया में भूत काल का सामान्य रूप से ज्ञान होता हो, कोई निश्चित समय न हो, वह सामान्य भूत काल होता है । जैसे—वह गया, उसने खाया आदि ।

आसन्न भूत—जिस क्रिया को समाप्त हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ होता है, वह क्रिया आसन्न भूत काल की कहलाती है । जैसे—(अ) "उसने खाया है, (आ) वह गया है ।"

पूर्ण भूत—जिस क्रिया में कार्य के बहुत समय पहले होने की बात हो, वह पूर्ण भूत काल की कहलाती है । जैसे—(अ) "वह पहुँचा था, (आ) मैं गया था ।"

अपूर्ण भूत—जहाँ कार्य बीते हुए समय में आरम्भ हुआ हो और उसके चलते रहने की बात हो, समाप्ति की नहीं ; वहां पर अपूर्ण भूत काल होता है । जैसे—(अ) "राम पढ़ रहा था, (आ) सूरज आ रहा था ।"

सन्दिग्ध भूत—जहाँ पर क्रिया के होने में सन्देह हो, वहाँ पर संदिग्ध भूत काल होता है । जैसे—(अ) "तुमने खाया होगा, (आ) वह चला गया होगा ।"

हेतुहेतुमद् भूत—जहाँ क्रिया का ऐसा रूप हो कि उसका होना भूत काल में सम्भव था, परन्तु कारणवश न हो सका, वहाँ हेतुहेतुमद् भूत काल होता है । जैसे—"यदि वह परिश्रम करता तो पास हो जाता ।"

वर्तमान काल—जहाँ किसी क्रिया का व्यापार वर्तमान समय में भी चलता रहता हो, उसे वर्तमान काल कहते हैं । जैसे—(अ) "वह जाता है, (आ) वह खाता है ।"

वर्तमान काल के भेद—वर्तमान काल के तीन भेद हैं—सामान्य वर्तमान, संदिग्ध वर्तमान और अपूर्ण वर्तमान।

सामान्य वर्तमान—सामान्य वर्तमान उसे कहते हैं, जहाँ साधारण रूप से वर्तमान काल का बोध होता हो। जैसे—(अ) "वह खाना खाता है, (आ) वे आते हैं।"

संदिग्ध वर्तमान—जहाँ वर्तमान काल की क्रिया के होने में संदेह पाया जाय, वहाँ संदिग्ध वर्तमान होता है। जैसे—(अ) "बच्चे पढ़ते होंगे, (आ) वे आते होंगे।"

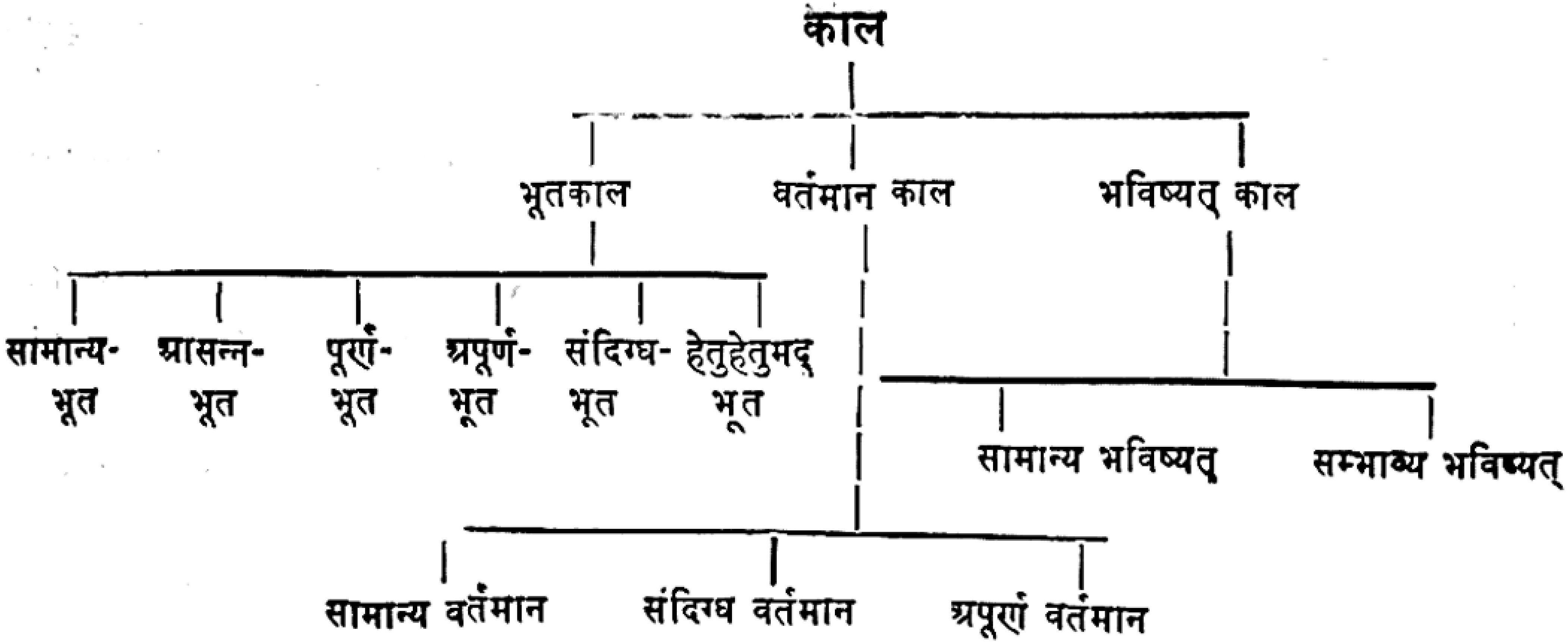
अपूर्ण वर्तमान—जिस समय क्रिया से यह पता चले कि कार्य अभी चल रहा है, वहाँ अपूर्ण वर्तमान होता है। जैसे—(अ) "वह जा रहा है, (आ) शांति गा रही है।"

भविष्यत् काल—जहाँ क्रिया के आगे आने वाले समय में होने का बोध हो वहाँ भविष्यत् काल होता है। जैसे—(अ) "वह आएगा, (आ) तुम वहाँ जाओगे।"

भविष्यत् काल के भेद—भविष्यत् काल के दो भेद हैं—सामान्य भविष्यत् और सम्भाव्य भविष्यत्।

सामान्य भविष्यत् काल—जहाँ क्रिया में साधारण रूप से भविष्यत् काल का बोध हो, वहाँ सामान्य भविष्यत् काल होता है। जैसे—(अ) "मैं अपने गाँव आऊँगा, (आ) वे यहाँ आयेंगे।"

सम्भाव्य भविष्यत्—जहाँ क्रिया के रूप से भविष्य में उसके होने की सम्भावना पाई जाय, वहाँ सम्भाव्य भविष्यत् काल होता है। जैसे—(अ) "स्यात् आज मेरा मित्र आए, (आ) हो सकता है आज वर्षा हो।"



प्रकार (Mood)

जिस रीति के द्वारा क्रिया के विधान का पता चले, उसे 'प्रकार' कहते हैं। एक ही क्रिया भिन्न रीति से प्रयुक्त होती है। प्रकार के द्वारा यह पता लगाया जाता है कि क्रिया किस रीति से प्रयुक्त हुई है ?

प्रकार के पाँच भेद होते हैं—निश्चयार्थक, सम्भावनार्थक, आज्ञार्थक, संदेहार्थक, हेत्वर्थक।

निश्चयार्थक—क्रिया की जिस रीति से कार्य के निश्चित होने का बोध हो वहाँ निश्चयार्थक प्रकार होता है। जैसे—"(अ) वह गाता है, (आ) छात्र पढ़ते हैं।"

सम्भावनार्थक—जहाँ क्रिया की रीति से अनुमान या सम्भावना आदि का बोध होता हो। जैसे—"(अ) स्यात् आज मेरा मित्र आए, (आ) हो सकता है वह नहीं आए।"

आज्ञार्थक—जहाँ क्रिया आज्ञा, प्रार्थना, उपदेश आदि को प्रकट करती है, वहाँ आज्ञार्थक प्रकार होता है। जैसे—"(अ) बच्चो! घर जाओ (आज्ञा), (आ) बड़ों का आदर करो (उपदेश), (इ) कृपया कभी इधर आइए (प्रार्थना)।"

संदेहार्थक—जिस क्रिया की रीति में संदेह का बोध हो, वहाँ संदेहार्थक प्रकार समझना चाहिए। जैसे—"(अ) राम गया होगा, (आ) वह आता होगा।"

हेत्वर्थक—जहाँ किसी कार्य से सम्बन्धित, क्रियाओं का वर्णन होता है वहाँ पर हेत्वर्थक प्रकार होता है। जैसे—"(अ) कमला यदि परीक्षा देती तो अवश्य पास होती, (आ) यदि तुम परिश्रम करते तो सुखी रहते।"

वाच्य

क्रिया के जिस प्रयोग से यह पता चले कि क्रिया का प्रयोग कर्त्ता, कर्म अथवा भाव में से किस के अनुसार किया गया है, उसे 'वाच्य' कहते हैं। वाच्य के तीन भेद हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य—क्रिया द्वारा कही गई बात का मुख्य विषय जब कर्त्ता होता है, तब कर्तृवाच्य होता है। जैसे—

"(अ) राम स्कूल जाता है, (आ) बच्चे मैदान में खेलते हैं।" यहाँ 'जाता है' और 'खेलते हैं' क्रियाओं के मुख्य विषय उनके कर्त्ता 'राम' और 'बच्चे' हैं। अतः यहाँ क्रिया का प्रयोग कर्तृवाच्य कहलाएगा।

कर्मवाच्य—क्रिया द्वारा कही गई बात का मुख्य विषय जहाँ कर्म होता है, वहाँ कर्मवाच्य होता है। जैसे—"राम के द्वारा एक सर्प मारा जाता है।" यहाँ 'मारा जाता है' क्रिया का मुख्य विषय सर्प है, जो कर्म है। अतः यहाँ कर्मवाच्य है।

भाववाच्य—जहाँ क्रिया द्वारा कही गई बात का मुख्य विषय धातु का अर्थ हो, वहाँ भाववाच्य होता है। भाववाच्य की क्रिया सदैव पुल्लिङ्ग एकवचन और प्रथम पुरुष में होती है। जैसे—"(अ) उससे पढ़ा नहीं जाता, (आ) राम से खाया नहीं जाता।"

क्रिया-विशेषण

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो क्रिया के अर्थ में विशेषता उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे शब्दों को 'क्रिया विशेषण' कहते हैं। जैसे—"वह तेज दौड़ता है।" इस वाक्य में 'दौड़ता है' क्रिया की विशेषता बतलाने वाला शब्द 'तेज' है। अतः यह शब्द क्रिया-विशेषण है। क्रिया-विशेषण के चार भेद हैं—कालवाचक, स्थानवाचक, रीतिवाचक, परिमाण-वाचक।

कालवाचक—जो शब्द क्रिया के होने के समय को प्रकट करें वे कालवाचक क्रियाविशेषण होते हैं। जैसे—"(अ) वह आज आएगी, (आ) वह कल कलकत्ते जायेगा।" यहाँ 'आज' और 'कल' शब्द कालवाचक क्रिया-विशेषण हैं।

स्थानवाचक—जो शब्द क्रिया के व्यापार के स्थान को प्रकट करें, वे स्थानवाचक क्रिया विशेषण होते हैं। जैसे—"(अ) राम अन्दर बैठा है, (आ) वे कहाँ गये ?" इनमें 'अन्दर' और 'कहाँ' शब्द स्थानवाचक क्रिया विशेषण हैं।

रीतिवाचक—जो शब्द क्रिया के व्यापार की रीति को प्रकट करें उन्हें रीतिवाचक क्रियाविशेषण कहते हैं। जैसे—"(अ) वह तेज दौड़ता है, (आ) श्याम धीरे-धीरे लिखता है।" यहाँ पर 'तेज' और 'धीरे-धीरे' शब्द रीतिवाचक क्रिया विशेषण हैं।

परिमाणवाचक—जो शब्द क्रिया के व्यापार के परिमाण (नाप-तोल) आदि को प्रकट करें, वे परिमाणवाचक क्रियाविशेषण होते हैं। जैसे—"(अ) वह बहुत खाता है, (आ) तनिक ठहरो।" इनमें 'बहुत' और 'तनिक' शब्द परिमाणवाचक क्रिया विशेषण हैं।

क्रिया-विशेषण

कालवाचक | स्थानवाचक | रीतिवाचक | परिमाणवाचक

सम्बन्धबोधक

कुछ शब्द संज्ञा अथवा सर्वनाम का उन्हीं के साथ या क्रिया के साथ सम्बन्ध बतलाते हैं। ऐसे शब्दों को सम्बन्धबोधक अथवा सम्बन्धसूचक शब्द कहते हैं। जैसे—"(अ) रमेश के साथ सुरेश आया, (आ) तुम्हारे सिवा मेरा रक्षक और कौन है ?" इन वाक्यों में 'साथ' और 'सिवा' शब्द क्रमशः संज्ञा और सर्वनाम के साथ सम्बन्ध सूचित करते हैं, अतः ये सम्बन्ध सूचक शब्द हैं। रचना और अर्थ की दृष्टि से इनके दो भेद होते हैं।

रचना की दृष्टि से भेद

रचना की दृष्टि से सम्बन्धबोधक के दो भेद होते हैं—मूल सम्बन्धबोधक और यौगिक सम्बन्धबोधक।

मूल सम्बन्धबोधक—जो सम्बन्धबोधक शब्द बिना दूसरे शब्दों के योग के बनते हैं, उन्हें मूल सम्बन्धबोधक कहते हैं। जैसे—तक, प्रति, बिना आदि।

यौगिक सम्बन्धबोधक—जो शब्द संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि शब्दों के योग से बनते हैं, उन्हें यौगिक सम्बन्धबोधक कहते हैं। जैसे—"(अ) वह समुद्र के समान गम्भीर है, (आ) गोविन्द सोहन की अपेक्षा सुन्दर है।" इन वाक्यों में क्रमशः 'समान' और 'सुन्दर' शब्द सम्बन्धबोधक हैं और ये क्रमशः विशेषण तथा क्रिया के योग से बने हैं।

अर्थ की दृष्टि से भेद

अर्थ की दृष्टि से सम्बन्धबोधक शब्दों के निम्नलिखित भेद होते हैं—

१. कालवाचक—पश्चात्, पूर्व;
२. स्थानवाचक—नीचे, ऊपर;
३. दिशावाचक—ओर, तरफ;
४. साधनवाचक—द्वारा;
५. हेतुवाचक—लिए, वास्ते;
६. विषयवाचक—विषय;
७. भिन्नतावाचक—सिवा;
८. विनिमयवाचक—बदले;
९. सादृश्यसूचक—समान;
१०. विरोधवाचक—विपरीत;
११. सहयोगवाचक—साथ, सहित;
१२. संग्रहवाचक—तक, पर्यन्त;
१३. तुलनावाचक—अपेक्षा।

समुच्चयबोधक

दो शब्दों अथवा वाक्यों को जोड़ने वाले शब्दों को 'समुच्चयबोधक' कहते हैं। जैसे—"माता और पिता की आज्ञा का पालन करो।" इस वाक्य में 'माता' व 'पिता' ये दोनों शब्द 'और' शब्द द्वारा जोड़ दिए गए हैं। अतः यहाँ पर 'और' समुच्चयबोधक है। इसी तरह दो वाक्यों को भी जोड़ा जाता है। जैसे—"मैं निश्चित समय पर वहाँ पहुँचा; परन्तु वे नहीं आए।" यहाँ पर 'परन्तु' समुच्चयबोधक है।

समुच्चयबोधक के दो भेद होते हैं—समानाधिकरण और व्यधिकरण।

समानाधिकरण—जो समुच्चयबोधक शब्द समान शब्दों या वाक्यों को जोड़ते हैं। जैसे—"सत्य बोलो, परन्तु प्यारा सत्य बोलो।"

व्यधिकरण—जहाँ समुच्चयबोधक शब्द किसी प्रधान वाक्य और उसके आश्रित उपवाक्य को जोड़ते हैं। जैसे—"अध्यापक ने कहा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।" इस वाक्य में 'कि' शब्द व्यधिकरण समुच्चयबोधक है।

विस्मयादिबोधक

जो शब्द तीव्रता के साथ विस्मय, शोक, हर्ष, क्रोध आदि भावों को व्यक्त करते हैं, उन्हें 'विस्मयादिबोधक' कहते हैं। ये शब्द अव्यय होते है। यथा—

१. ओ हो ! वाह ! वा ! (विस्मय)
२. हाय ! हा ! उफ़ ! (शोक)
३. अहा ! शाबास ! (हर्ष)
४. चुप ! हट ! क्यों बे ! (क्रोध)
५. ठीक ! अच्छा ! (स्वीकार)
६. अरे ! ओ ! हे ! अजी ! (सम्बोधन)

पद-परिचय-चित्र

शब्द	क्या-क्या बातें दिखलानी हैं	उदाहरण	पद परिचय
संज्ञा	संज्ञा के भेद, लिंग, वचन, कारक, वाक्य में सम्बन्ध	राम खाना खाता है।	राम—व्यक्तिवाचक संज्ञा, पुल्लिंग, एकवचन, कर्त्ता कारक, 'खाता है' क्रिया का कर्त्ता।
सर्वनाम	सर्वनाम के भेद, लिंग, वचन, कारक, वाक्य में सम्बन्ध	वह दिल्ली जाता है।	वह—पुरुषवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, कर्त्ता कारक, 'जाता है' क्रिया का कर्त्ता।
विशेषण	विशेषण के भेद, संज्ञा से सम्बन्ध, यदि तुलना हो तो उसका भी निर्देश करना	राम श्याम से सुन्दर-तर है।	सुन्दरतर—गुणवाचक विशेषण, उत्तरावस्था, राम का विशेषण है।
क्रिया	क्रिया के भेद, वचन, काल, वाच्य, वाक्य में सम्बन्ध	मोहन के द्वारा एक साँप मारा गया।	मारा गया—सकर्मक क्रिया ('साँप' कर्म है), एकवचन, सामान्य भूत, कर्मवाच्य, मोहन (कर्त्ता) तथा साँप (कर्म) में सम्बन्ध है।

क्रियाविशेषण	क्रिया विशेषण का भेद, सम्बन्धित क्रिया का निर्देश	राम तेज दौड़ता है।	तेज—रीतिवाचक विशेषण, 'दौड़ता है' क्रिया की विशेषता बतलाता है।
सम्बन्धसूचक	सम्बन्धसूचक का भेद, वाक्य में सम्बन्ध	उसके सिवा हमारा कौन है ?	सिवा—सम्बन्ध सूचक भिन्नता-वाचक, 'उनके' तथा 'हमारा' सर्वनाम को मिलाता है।
समुच्चयबोधक	भेद, मिलाने वाले शब्द या वाक्य	राम आएगा और श्याम आएगा।	और—समानाधिकरण समुच्चयबोधक, दो समान वाक्यों को मिलाता है।
विस्मयादिबोधक	विस्मयादिबोधक का नाम, मनोदशा	अहा! मैं पास हो गया।	अहा!—विस्मयादिबोधक, हर्षसूचक।

उपसर्ग

'उपसर्ग' वे शब्दांश हैं, जो शब्द के पूर्व लग कर उसका अर्थ परिवर्तित कर देते हैं। जैसे—"प्र+हार=प्रहार, आ+हार=आहार।" हिन्दी में तीन तरह के उपसर्ग प्रयोग में आते हैं—संस्कृत उपसर्ग, हिन्दी उपसर्ग और उर्दू उपसर्ग।

संस्कृत उपसर्ग—प्र+भाव=प्रभाव, प्र+कर्ष=प्रकर्ष,
परा+धीन=पराधीन, अप+शब्द=अपशब्द,

अप+मान=अपमान,
प्रति+कूल=प्रतिकूल।

अभि+प्राय=अभिप्राय,

हिन्दी उपसर्ग—अ+चेत=अचेत,
अध+पका=अधपका,
भर+पूर=भरपूर,

अध+खिला=अधखिला,
नि+डर=निडर,
सु+शील=सुशील।

उर्दू उपसर्ग—बद+नाम=बदनाम,
बा+अदब=बाअदब,
ला+पता=लापता।

बे+ईमान=बेईमान,
दर+असल=दरअसल,

प्रत्यय

जो शब्दांश शब्द के अन्त में जुड़कर अर्थ बदल देते हैं, उन्हें 'प्रत्यय' कहते हैं।

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं—कृत प्रत्यय और तद्धित प्रत्यय।

(अ) कृत प्रत्यय—जो प्रत्यय धातुओं के अन्त में लगते हैं, उन्हें 'कृत प्रत्यय' कहते हैं। जैसे—"पालन+हार=पालनहार। इसमें 'हार' कृत प्रत्यय 'पालन' के बाद में लगा है। कृत प्रत्यय पाँच प्रकार के होते हैं—

१. कर्तृवाच्य—मिलन+सार=मिलनसार।
२. कर्म वाच्य—बिछाना+औना=बिछौना।
३. करणवाच्य—कतरना+ई =कतरनी।

४. भाव वाच्य—बनाना+वट बनावट ।

५. क्रियाद्योतक—पढ़ +आ =पढ़ा ।

(आ) तद्धित प्रत्यय—जो प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि में लगते हैं, उन्हें 'तद्धित प्रत्यय' कहते हैं । जैसे—दूध+वाला=दूधवाला । तद्धित प्रत्ययों के आठ भेद हैं—

१. कर्तृवाचक—लकड़+हारा=लकड़हारा ।

२. भाववाचक—वीर+त्व =वीरत्व ।

३. गुणवाचक—सुख+दायक=सुखदायक ।

४. लघुतावाचक—लुट+इया =लुटिया ।

५. क्रमवाचक —दूस+रा =दूसरा ।

६. सादृश्यवाचक—पीला+सा=पीलासा ।

७. अपत्यवाचक—दशरथ से 'दाशरथि' ।

८. सम्बन्धवाचक—मम+ऐरा=ममेरा ।

समास

जब दो या दो से अधिक ऐसे शब्द, जिनका परस्पर सम्बन्ध हो, विभक्ति हटा कर एक साथ मिला दिये जाते हैं, तो उसे 'समास' कहते हैं । जैसे—'राजा का पुरुष' समास करके बना 'राजपुरुष' । समास के छः भेद हैं—अव्ययीभाव, तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु, द्वन्द्व और बहुव्रीहि ।

अव्ययीभाव—जिसमें पहला खण्ड प्रधान हो, वह 'अव्ययी भाव' होता है। इसमें पहला पद अव्यय होता है। जैसे—यथा + शक्ति = यथाशक्ति।

तत्पुरुष—जिसमें दूसरा पद प्रधान हो, वह 'तत्पुरुष' होता है। इसमें कर्त्ता और सम्बोधन को छोड़ कर अन्य सब कारकों का लोप हो सकता है। जिस कारक का लोप हो, उसी के नाम से उस तत्पुरुष को पुकारते हैं। जैसे—"राजकुमार = राजा का कुमार" (सम्बन्ध तत्पुरुष)।

कर्मधारय—जिस समास में विशेषण और विशेष्य का मेल हो, वह 'कर्मधारय' होता है। जैसे—नील-कमल।

द्विगु—जहाँ पूर्व पद समुदायवाचक हो, वहाँ 'द्विगु' समास होता है। जैसे—सप्तसिन्धु।

द्वन्द्व—जिस समास के सब पद प्रधान होते हैं तथा बीच में 'और' छिपा रहता है वह 'द्वन्द्व' समास होता है। जैसे—माता-पिता।

बहुव्रीहि—जिस समास में कोई खण्ड प्रधान न हो, वह 'बहुव्रीहि' समास होता है। यह सभी खण्डों से भिन्न वस्तु का द्योतक होता है। जैसे—पीताम्बर।

सन्धि

दो वर्णों के मेल से जो विकार उत्पन्न होता है, उसे 'सन्धि' कहते हैं। सन्धि के तीन प्रकार हैं—स्वर सन्धि, व्यंजन सन्धि, और विसर्ग सन्धि।

स्वर सन्धि

जहां स्वर से परे स्वर हो वहां 'स्वरसन्धि' होती है। इसके पांच भेद हैं-दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण और अयादि।

१. **दीर्घ सन्धि**—अ क् (अ इ उ ऋ) के बाद सवर्ण स्वर हो तो वहां दीर्घ हो जाता है। जैसे—हिम+आलय=हिमालय, कवि+इन्द्र=कवीन्द्र, भानु+उदय=भानूदय।

२. **गुण सन्धि**—अ या आ के पश्चात् इ या ई हो तो ए हो जाता है; उ या ऊ हो तो ओ, और ऋ हो तो अर् हो जाता है। जैसे—देव+इन्द्र=देवेन्द्र, जल+ऊर्मि=जलोर्मि, महा+ऋषि=महर्षि।

३. **वृद्धि सन्धि**—अ या आ के पश्चात् ए, ऐ, ओ, औ आने पर वृद्धि हो जाती है। जैसे—एक+एक=एकैक, जल+ओघ=जलौघ, महा+औषध=महौषध।

४. **यण सन्धि**—इ, उ, ऋ से परे यदि असमान स्वर हों तो ये क्रमशः य्, व्, र् हो जाते हैं। जैसे—यदि+अपि=यद्यपि, अनु+अय=अन्वय, मातृ+आज्ञा=मात्राज्ञा।

५. **अयादि सन्धि**--यदि ए, ऐ, ओ, औ से परे भिन्न स्वर आए, तो उनके स्थान पर क्रमशः अय्, आय्, अव्, आव् हो जाता है। जैसे--ने+अन=नयन, नै+अक=नायक, भो+अन=भवन, पौ+अक=पावक।

व्यंजन सन्धि

व्यंजन के पश्चात् व्यंजन या स्वर आने पर जो सन्धि होती है, उसे व्यंजन सन्धि कहते हैं। इसके आवश्यक नियम ये हैं :—

१. क् च् ट् त् प् के बाद कोई स्वर अथवा घोष व्यंजन हो तो उनके स्थान पर क्रमशः उसी वर्ग का तीसरा अक्षर हो जाता है। जैसे—वाक्+दान=वाग्दान, वाक्+ईश=वागीश।

२. क् च् ट् त् प् के आगे यदि कोई अनुनासिक व्यंजन हो तो उसकी जगह उसी वर्ग का पाँचवाँ अक्षर हो जायेगा। जैसे—वाक्+मय=वाङ्मय, जगत्+नाथ=जगन्नाथ।

३. त् या द् से परे चवर्ग हो तो उसके स्थान में चवर्ग; टवर्ग हो तो टवर्ग और ल हो तो ल हो जाता है। जैसे—सत्+चित=सच्चित, विपद्+जाल=विपज्जाल, तत्+टीका=तट्टीका, उत्+लास=उल्लास।

४. छ् से पूर्व यदि स्वर हो तो च् और आ जाता है। जैसे—परि+छेद=परिच्छेद, आ+छादन=आच्छादन।

५. म से परे व्यंजन हो तो म के स्थान में अनुस्वार अथवा उसी वर्ग का पाँचवाँ अक्षर हो जाता है। जैसे—सम्+तोष=संतोष, किम्+चित्=किञ्चित्।

६. ष् के पश्चात् त् या थ् आने पर क्रमशः ट और ठ हो जाता है। जैसे—आकृष्+त=आकृष्ट, षष्+थ=षष्ठ।

७. यदि किसी ह्रस्व स्वर के पश्चात् र् हो और उसके आगे र हो तो पहले र् का लोप हो जायेगा और ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाएगा। जैसे—निर्+रोग=नीरोग।

८. ऋ, र्, ष के आगे यदि न हो तो न के स्थान पर ण् हो जाता है। इनके बीच में कवर्ग, पवर्ग, स्वर, य, व, र आदि का व्यवधान हो तो भी ण् हो जाता है। जैसे—परि+मान=परिमाण, पाषा+न=पाषाण, ऋ+न=ऋण।

विसर्ग संधि

विसर्ग के पश्चात् चाहे स्वर आये या व्यंजन, जो संधि होगी वह 'विसर्ग' सन्धि कहलाती है। विसर्ग संधि के कुछ नियम ये हैं—

१. विसर्ग के आगे च् या छ् हो तो विसर्ग का श् हो जाता है; ट् या ठ् हो तो ष् और त् या थ् हो तो स् हो जाता है। जैसे—निः + चल = निश्चल, धनुः + टंकार = धनुष्टंकार, मनः + ताप = मनस्ताप।

२. यदि विसर्ग ई अथवा आ के पश्चात् आया हो और उसके आगे क् ख् अथवा प् फ् हो तो विसर्ग की जगह ष् हो जाता है। जैसे—दुः + कर्म = दुष्कर्म, दुः + प्रकृति = दुष्प्रकृति।

३. विसर्ग के पूर्व अ हो और विसर्ग के आगे घोष व्यंजन हो तो विसर्ग के स्थान पर ओ हो जाता है। जैसे—मनः + रथ = मनोरथ, तमः + गुण = तमोगुण।

४. विसर्ग के पहले अ को छोड़कर कोई स्वर हो और आगे कोई स्वर या घोष व्यंजन न हो, तो विसर्ग के स्थान पर र् हो जाता है। जैसे—निः + आशा = निराशा, निः + जन + निर्जन।

५. यदि अ के बाद विसर्ग आये और आगे क् ख् या प् फ् हों तो विसर्ग में विकार नहीं होता। जैसे—पयः + पान = पयःपान, उपः + काल = उपःकाल।

६. विसर्ग से पहले अ हो और बाद में भी अ हो तो विसर्ग के स्थान पर ओ हो जाता है; अगले अ का लोप हो जाता है और लोप सूचक ऐसा (ऽ) चिह्न लगा दिया जाता है। जैसे—यशः + अभिलाषी = यशोऽभिलाषी।

वाक्य-विचार

शब्दों के ऐसे समूह को 'वाक्य' कहते हैं, जिससे कहने या लिखने वाले का भाव पूरी तरह समझ में आ जाए। वाक्य के दो खंड होते हैं—उद्देश्य और विधेय।

उद्देश्य—जिसके विषय में वाक्य में कुछ कहा जाता है, उसे 'उद्देश्य' कहते हैं।

विधेय—उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाय, उसे 'विधेय' कहते हैं।

वाक्य के भेद

वाक्य के तीन भेद हैं—सरल वाक्य, संयुक्त वाक्य और मिश्रित वाक्य।

सरल वाक्य—जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय हो, उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे—"वह खाना खाता है।"

संयुक्त वाक्य—जिस वाक्य में दो या दो से अधिक वाक्य जुड़े हों और वे एक दूसरे के आश्रित न हों, वह 'संयुक्त वाक्य' होता है। जैसे—"वह कलकत्ते रहता है और वहीं पढ़ता है।"

मिश्रित वाक्य—जिस वाक्य में एक प्रधान वाक्य तथा एक या अधिक उसके आश्रित उपवाक्य होते हैं, वह 'मिश्रित वाक्य' कहलाता है। जैसे—"अध्यापक ने कहा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है।"

आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य और क्रिया-विशेषण उपवाक्य।

वाक्य-विग्रह

सरल वाक्य-विग्रह

वाक्य --सोहन के भाई मोहन ने अपने चाकू से हरीश को मार दिया।

उद्देश्य	उद्देश्यवर्धक	पूरक	विधेय	विधेयवर्धक	कर्म	कर्मवर्धक
मोहन ने	सोहन के भाई	--	मार दिया	अपने चाकू से	हरीश को	—

संयुक्त वाक्य-विग्रह

वाक्य— राम को उन्होंने धमकाया, परन्तु वह न माना।

वाक्य	वाक्य-भेद	योजक	उद्देश्य	उद्देश्यवर्धक	विधेय	विधेयवर्धक	कर्म	कर्मवर्धक
राम को धमकाया	प्रधान उपवाक्य	परन्तु	उन्होंने	—	धमकाया	न	राम को	—
परन्तु न माना	समानाधिकरण उपवाक्य		वह		माना			

मिश्रित वाक्य-विग्रह

वाक्य—जो पैन आपने कल खरीदा था, आज खो गया।

वाक्य-खण्ड	वाक्य-भेद	योजक	उद्देश्य	उद्देश्यवर्धक	विधेय	विधेय-वर्धक	कर्म	कर्म-वर्धक	क्रिया-विशेषण
(१) आज खो गया	प्रधान वाक्य				खो गया				
(२) जो पैन आपने कल खरीदा था	आश्रित वाक्य (विशेषण उप-वाक्य)	—	आपने	—	खरीदा था	—	पैं	जो	कल

विराम चिह्न

किसी वाक्य का उच्चारण करते समय हम कहीं-कहीं पर आवश्यकतानुसार कम या अधिक रुक जाते हैं। इस रुकने को 'विराम' कहते हैं। लिखते समय थोड़े और अधिक देर रुकने आदि के लिए विराम चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। नीचे विराम चिह्नों का सोदाहरण परिचय दिया जा रहा है—

विराम-चिह्न

१.	पूर्ण विराम	।	२.	अर्धविराम	;
३.	अल्प विराम	,	४.	प्रश्नवाचक	?
५.	विस्मयादिबोधक	!	६.	योजक	—
७.	कोष्ठक	( )	८.	उद्धरण	" "
९.	लाघव	०	१०.	निर्देशक	——
११.	अपूर्णताबोधक	....	१२.	त्रुटिबोधक	^

अनेक के स्थान पर एक शब्द

अनेक शब्द	एक शब्द
जो कभी बूढ़ा न हो	अजर
जो कभी न मरे	अमर
संसार को जीतने वाला	विश्वविजयी
जिसकी थाह न ली जा सके	अथाह
अवसर के अनुसार बदलने वाला	अवसरवादी

जो ईश्वर को मानता है	ग्रास्तिक
जो ईश्वर को नहीं मानता	नास्तिक
जो प्रकाशित करने योग्य न हो	गोपनीय
ग्रध्यात्म से सम्बन्ध रखने वाला	ग्राध्यात्मिक
पति ग्रौर पत्नी का जोड़ा	दम्पति
मुक्ति चाहने वाला	मुमुक्षु
जो सोच-समझकर काम करता हो	विवेकी
जो पीने योग्य हो	पेय
जो ग्रत्यन्त कठिन हो	दुरूह

क्रियाओं से भाववाचक संज्ञाएँ बनाना

क्रिया	भाववाचक संज्ञा	क्रिया	भाववाचक संज्ञा
लड़ना	लड़ाई	जीतना	जीत
पढ़ना	पढ़ाई	झगड़ना	झगड़ा
गिरना	गिरावट	दौड़ना	दौड़

हँसना	हँसी	चिल्लाना	चिल्लाहट
बढ़ना	बाढ़	धोना	धुलाई
पीना	पान	जागना	जाग
काटना	कटाई	लिखना	लेख
चलना	चाल	उड़ना	उड़ान
घबड़ाना	घबराहट	ठगना	ठगी
हारना	हार	कमाना	कमाई

पर्यायवाची शब्द

पृथ्वी—भूमि, भू, पृथिवी, गह्वरी, मेदिनी, मही, धरा, वसुमती, वसुधा, धरणी।

जल—उदक, अम्बु, नीर, वारि, तोय, पय, पानी, सलिल।

आकाश—नभ, गगन, व्योम, अम्बर, अंतरिक्ष, शून्य।

कमल—अरविन्द, पद्म, सरसिज, सरोरुह, सरोज, वारिज, नीरज, पंकज।

सूर्य—दिनकर, दिनेश, अर्क, भानु, सविता, तरनि, आदित्य।

चन्द्रमा—इन्दु, शशांक, राकेश, निशाकर, सुधांशु, हिमांशु, क्षपाकर, मयंक।

रात—निशा, यामिनी, विभावरी, रजनी, रात्रि, शर्वरी, क्षपा, तमिस्रा।

पहाड़—नग, पर्वत, शैल, गिरि, भूधर, धराधर, महीधर।

तालाब—सर, सरोवर, जलाशय, तड़ाग, पुष्कर ।

राजा—भूप, भूपति, नृपति, नरेश, भूपाल, महीपति, नृप ।

समुद्र—उदधि, जलधि, पारावार, सागर, वारिधि, नीरनिधि, वारीश, नदीश, सिन्धु ।

सांप—व्याल, नाग, अहि, सर्प, विषधर, भुजंग, पन्नग ।

हाथी—नाग, द्विप, करी, द्विरद, गज, कुञ्जर, व्याल ।

बाल—अलक, केश, कच, कुन्तल, शिरोरुह ।

विपरीतार्थक शब्द

शब्द	विलोम	शब्द	विलोम
सार्थक	निरर्थक	उत्साही	निरुत्साही
सम्मुख	विमुख	कृतज्ञ	कृतघ्न
संयोग	वियोग	लौकिक	अलौकिक
प्राचीन	नवीन	अभिशाप	वरदान
धनी	निर्धन	उन्नति	अवनति
शान्ति	अशान्ति	साकार	निराकार
शुद्ध	अशुद्ध	अपकर्ष	उत्कर्ष

मुहावरे

१. अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता	=	अकेला मनुष्य बड़ा काम नहीं कर सकता।
२. अंधी पीसे कुत्ते खाएँ	=	एक कमाये और दूसरा वैसे ही खर्च करे।
३. अंधे की लाठी	=	एकमात्र सहारा।
४. खरी-खरी सुनाना	=	साफ़-साफ़ कहना।
५. तूती बोलना	=	प्रभाव होना।
६. मिट्टी का माधो	=	नितान्त मूर्ख।
७. सात घाट का पानी पीना	=	अनुभवी और चतुर होना।
८. कंगाली में आटा गीला	=	दुःख पर दुःख आना।
९. नाक भौं चढ़ाना	=	नाराज़ होना।
१०. दिल पर पत्थर रखना	=	दिल कड़ा करना।
११. आंखों में खून उतरना	=	बहुत अधिक क्रुद्ध होना।
१२. कलम तोड़ना	=	बहुत अच्छा लिखना।
१३. आंखों से गिरना	=	सम्मान कम हो जाना।
१४. टांग अड़ाना	=	बिना बात के अपना दखल देना।
१५. घी के दिये जलाना	=	बहुत खुशी मनाना या धनवान होना।

लोकोक्तियाँ

१. दूर के ढोल सुहावने = दूर की बातें अच्छी लगती हैं।

२. भागते चोर की लंगोटी भली = सारी वस्तु के नष्ट होते समय जो बच रहे वही ठीक है।

३. चोर की दाढ़ी में तिनका = अपराधी स्वयं डरता है।

४. अटका बनिया देय उधार = दबाव से काम करना।

५. अंधेर नगरी चौपट राजा = बिना प्रबन्धक के कार्य में गड़बड़ी होना।

६. गंगा गये तो गंगादास जमुना गये तो जमुनादास = बिना सिद्धान्त का व्यक्ति।

७. कोयले की दलाली में हाथ काले = बुरी संगति से बुराई मिलती है।

८. घर का भेदी लंका ढाय = घर की फूट हानिकारक होती है।

९. साँप मरे ना लाठी टूटे = सरलता से कार्य होना।

१०. अधजल गगरी छलकत जाय = थोड़ा ज्ञान रखने वाला व्यक्ति अधिक घमंड करता है।

११. अस्सी की आमद चौरासी का खर्च = आय से अधिक व्यय करना।

१२. काला अक्षर भैंस बराबर = बिना पढ़ा-लिखा हुआ होना।

१३. ऊँची दुकान फीके पकवान = आडम्बर तो बहुत किया गया हो, पर अन्दर खोखला हो।

१४. बग़ल में छुरी मुँह में राम-राम	=	ऊपर से मित्रता दिखाना पर मन में वैर-भाव रखना।
१५. आम के आम गुठलियों के दाम	=	बहुत अधिक लाभ होना।
१६. नाच न जाने आँगन टेढ़ा	=	काम करना न आता हो, किन्तु इस दुर्बलता को छिपाने के लिए बहाने बनाए जाएँ।
१७. जितने मुँह उतनी बातें	=	प्रत्येक व्यक्ति का मत भिन्न-भिन्न होना।

●

नूतन प्रेस, चाँदनी चौक दिल्ली।